भास के नाटक

संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार भास के दो उत्कृष्ट नाटकों
'स्वप्नवासवदत्ता' तथा 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'
के हिन्दी रूपान्तर

रूपान्तरकार
भगवतशरण उपाध्याय
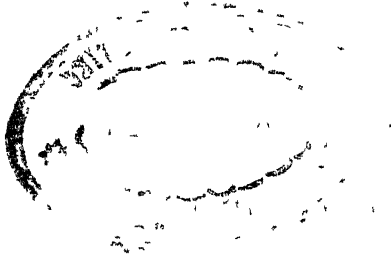
प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली ६

भूमिका

महाकवि भास संस्कृत के उन महाकवियों में से हैं जिनकी संस्कृत साहित्य पर गहरी छाप पड़ी है। साहित्य में बार-बार उस नाटककार का स्मरण हुआ है और वह स्मरण असाधारण आदर का द्योतक है। स्वयं कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में उसे 'प्रथितयशस्' लिख कर सराहा है। पर निःसन्देह सदियों से उस ख्यातनामा भास का नाम-मात्र उपलब्ध था या उसके नाटकों के कुछ श्लोक या स्थल यत्रतत्र उद्धृत मिल जाते थे, उसकी कोई समस्त रचना इस शताब्दी के पहले प्रकाशित नहीं हुई थी।

सन् १९१२ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री को अचानक भास के तेरह नाटक मिल गये जिनको उन्होंने 'त्रिवन्द्रम् सीरिज़' में पहली बार प्रकाशित किया। इनकी वास्तविकता अथवा इनके भास के लिखे होने में विद्वानों ने सन्देह किया है, पर उस सम्बन्ध की चर्चा यथा-स्थान की जायेगी। यहाँ पहले भास के प्रति साहित्यगत निर्देश का उल्लेख करेंगे।

भास भी अनेक संस्कृत कवियों की ही भाँति कुछ ऐसा नहीं छोड़ गये, या छोड़ा भी तो वह आज हमें उपलब्ध नहीं, जिससे हम उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध, जन्म, जीवन, काल, स्थान आदि के विषय में जान सकते। परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उस कवि के नाम से संस्कृत-साहित्य न केवल परिचित था वरन् उस पर उसकी शालीनता की गहरी छाप थी। अनेक बार अनेकधा महाकवियों ने, अलंकार शास्त्रियों और

सुभाषितों ने उसके नाम या रचनाओं और उनके स्थानो का उल्लेख किया है या उद्धरण दिये है। उसके प्रति निर्देश करने वालो में जाने हुये निम्नलिखित है—कालिदास, भामह, बाणभट्ट, दण्डी, वामन, वाक्पति-राज, अभिनव गुप्त, भोजदेव, राजशेखर, शारदातनय, सर्वानन्द, सागर-नन्दी, रामचन्द्र और गुणचन्द्र, कौमुदी महोत्सव, और शाकुन्तल व्याख्या।

इनमें से कुछ के स्थल यहाँ उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रदीना, प्रबन्धानतिक्रम्यकालिदास, मालविकाग्निमित्र······ अंक १

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के 'अणेण मा भादा हदो, अणेण मम पिदा अणेण मम सुदो' काव्यालंकार–४,४०-४७ में श्लोकबद्ध उद्धरण—

हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्र. पिता मम।
मातुलो भागिनेयश्च रुषा संरब्धचेतसः ॥४४॥

भामह

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकै·।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥

—हर्षचरित

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥

—दण्डी, काव्यादर्श, २,२२६ (बालचरित, चारुदत्त से)

'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्'

—प्रतिज्ञा० से वामन, काव्यालंकार, ५, २.

यासा बलिर्भवति मद्गृहदेहलीना--
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्व. ।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु-
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥

—वही

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुख मम ॥

—वही, ४, ३ (स्वप्नवासवदत्ता से)

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—सूक्तिमुक्तावलि में उद्धृत राजशेखर,

भासम्मि जलणमित्ते कन्ती देवे अजस्स रहुआरे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥

—गउड़वहो (वैदग्ध्यवर्णनम्),

'क्वचित् क्रीड़ा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्'

—अभिनवभारती, गायकवाड़ ओ० सी०

तत एव विक्रमोर्वशीय स्वप्नवासवदत्ता(त्ते) नाटकमिति व्यवहरन्ति ।

—वही, पृ, १७,

महाकविना भासेनापि स्वप्नप्रबन्ध उक्तः-

त्रेतायुगं तद्धि न मैथिली सा
रामस्य रागपदवी मृदु चास्य चेतः।
लब्ध्वा जनस्य यदि रावणमस्य कायं
प्रोत्कृत्य तन्न तिलशो न वितृप्तिगामी॥

—वही, पृ, ३२०

स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्था द्रष्टुं राजा समुद्रगृहक गतः। पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयने सुष्वाप। वासवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श। स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे। स्वप्नशब्देन चेह स्वापो वा स्वप्नदर्शनं वा स्वप्नायितं वा विवक्षितम्।

—भोजदेव, शृङ्गारप्रकाश

शौनकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुरङ्गीव।
अर्हतिकीर्तिमतीयं कान्तं कल्याणवर्माणम्॥

—कौमुदीमहोत्सव, २, १५; ५, ६

चारुदत्ते पुनः सूत्रधारस्यापि प्राकृतम्

—शाकुन्तलव्याख्या

भास के एक श्लोक—नवं शरावं—का उल्लेख कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में भी मिलता है, पर लगता है कि वह श्लोक दोनों ने अन्यत्र से, किसी पूर्ववर्ती साहित्य से लिया है। ऐसा न मानने से एक कठिनता यह हो जायेगी कि भास को तब कौटिल्य से भी पूर्व प्रायः ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में रखना पड़ेगा जो अन्य कई विरोधी प्रमाणों के कारण संभव

नही। उसका समय अश्वघोष के पश्चात् और कालिदास के पूर्व प्रायः दूसरी-तीसरी शती ईस्वी में होना चाहिये।

भास का नाम संस्कृत साहित्य के प्रेमियो और विद्वानों में इतना जाना हुआ होने के कारण उसकी कृतियों को पाने की भूख सभी को थी और जैसे ही महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने इन तेरह नाटकों की संप्राप्ति की सूचना दी, पंडितो ने झट उन्हें भास की कृति मानकर स्वीकार कर लिया। पर जैसे ही प्रारम्भिक उत्साह कम हुआ और आलोचना की पैनी आँखो ये नाटक देखे-विचारे जाने लगे वैसे ही शंकायें बढ़ीं और झट विद्वानो में इस प्रसंग पर परस्पर विरोधी दो दल बन गये। एक दल उनका था जो सर्वथा इन कृतियों को भास की रचनायें मानने लगे, जैसे गणपति शास्त्री, डाक्टर कीथ आदि; दूसरे उनका जिन्होंने इन्हें भास की रचना मानने में आपत्ति की; जैसे सिल्वाँ लवी, विन्र्तानित्स, मोर्गेनस्तेर्ने, सुक्थंकर आदि। एक तीसरा वर्ग ऐसे विद्वानों का भी निकल आया जिसने इन्हें भास की रचना में आशिक रूप में ही माना।

अभाग्यवश इन नाटकों के प्रवेशक में अथवा हस्तलिपि के ही किसी भाग में भास का नाम लिखा नहीं मिला जो विशेष अस्वीकृति का कारण बन गया। इनको भास की कृति मानने वालो ने साधारणतया नीचे लिखा तर्क प्रस्तुत किया —

(१) इन सभी नाटको का आरम्भ 'नान्द्यते ततः प्रविशति' निर्देश से होता है। इसके विरुद्ध पीछे के 'क्लासिकल' नाटको में पहले 'नान्दी' श्लोक होता है कि 'नान्द्यते' आदि निर्देश। कहते हैं कि भास की इसी विशिष्टता का उल्लेख—कि उसके नाटक सूत्रधार के प्रवेश से आरम्भ

होते हैं, बाण ने अपने इस श्लोक में किया है—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकै बंहुभूमिकै : ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरपि ॥

(२) भूमिका भाग को सर्वत्र इनमें 'स्थापना' कहा गया है। 'क्लासिकल' नाटकों में इसके विरुद्ध भूमिका के लिये 'प्रस्तावना' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(३) 'क्लासिकल' नाटकों के विपरीत इनकी 'स्थापना' में नाटक या नाटककार का नाम नहीं मिलता, जिससेयह विचार उठा कि शायद ये नाटक क्लासिकल नाटको से पूर्व के हैं।

(४) भरतवाक्य का सर्वत्र इसी आशीर्वचन से अन्त होता है कि 'हमारे नृपति अखिल पृथ्वी पर शासन करे !'

(५) इन नाटकों में परस्पर वस्तु-गठन में समानता है और अनेक के प्रारम्भिक श्लोकों में मुद्रालंकार के अनुसार प्रधान पात्रों के नाम गिना दिये गये हैं जो 'क्लासिकल' परिपाटी से भिन्न शैली है। अधिकतर इनकी वर्णन शैली भी समान है।

(६) इनमें से कम से कम एक (स्वप्नवासवदत्ता) कृति को राजशेखर ने भास का माना है। इससे इस संग्रह की अन्य रचनायें भी, जो शैली, रंगानुशासन, भाषा, भावादि में परस्पर समान हैं, उसी कवि की होंगी।

(७) अनेक अलंकार-शास्त्रियों ने अपने ग्रंथों में इन कृतियों से उद्धरण दिये हैं जो इस संग्रह में हैं। उदाहरणार्थ वामन ने स्वप्न-वासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और चारुदत्त से उद्धरण दिये हैं; भामह ने भी प्रतिकारार्थ में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के स्थल को चुना है; दण्डी ने बालचरित और चारुदत्त के 'लम्पतीव' आदि श्लोक का उल्लेख किया है; इसी प्रकार अभिनवगुप्त ने अपनी 'नाट्यवेदविवृति' में स्वप्नवास-वदत्ता का उल्लेख किया है, यद्यपि अपने 'ध्वन्यालोकालोचन' में उसने स्वप्नवासवदत्ता के जिस श्लोक का उल्लेख किया है वह प्रस्तुत संग्रह में नहीं है। इन प्रमाणों के अतिरिक्त इनका छन्दों का प्रयोग भी क्लासिकल के विपरीत, अपना है। अधिकतर इनमें वीर श्लोक का व्यवहार हुआ है। साथ ही पाणिनीय व्याकरण के अनुबन्धों की अवमानता और प्राकृतों का इनका असाधारण व्यवहार भी इन्हे क्लासिकल नाटकों से पूर्व की कृतियाँ सिद्ध करते हैं। डा० मैक्स लिन्देनो ने इस दिशा में काफ़ी प्रकाश डाला है। इनकी प्राचीनता घोषित करते हुए उन्होंने भरत के 'नाट्यशास्त्र' के प्रति इनकी अवमानना की ओर भी संकेत किया है।

इन प्रमाणों के विरुद्ध गणपति शास्त्री के इस संग्रह की कृतियों को भास की रचना न मानने वाले वर्ग ने भी अच्छा पर्याप्त प्रबल तर्क प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है; उनका कहना है कि नाटकों में रच-यिता का नाम इस कारण नहीं दिया गया कि इनके लिखने वाले साहि-त्यिक चोर थे, जिससे जान-बूझकर उन्होंने नाटककार के नाम नही दिये। सूत्रधार सम्बन्धी बाण के श्लोक के विषय में उनका कहना है कि वह किसी विशेषता की ओर संकेत नहीं करता और उस निर्दोष साधारण कथन से यह विशेष अर्थ निकालना अनुचित है, क्योंकि क्लासिकल नाटकों को भी 'सूत्रधारकृतारम्भ' कहने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती। वस्तुतः यह रंगानुशासन दाक्षिणात्य पाण्डुलिपियो की विशेषता

है न कि क्लासिकल नाटको से पूर्व का होने का प्रमाण।

राम पिशारोटी ने पहले वर्ग के प्रमाणो के विरुद्ध एक अत्यन्त मनो-रंजक स्थिति की ओर संकेत किया। उन्होंने बताया के ये नाटक के रत्न के परम्परायिक अभिनेताओ के संकलन है। इन अभिनेताओं (चक्यारों) की परम्परा यह है कि ये कभी समूचा नाटक नहीं खेलते, बल्कि वे कभी एक नाटक से दृश्य चुन लेते है कभी दूसरे से, और अपने प्रत्येक खेल के लिये उनका समान परिचय होता है। कुछ आश्चर्य नही कि इनकी प्रस्तावनाएँ बाद में लिखी गईं और प्रधान दृश्य मूलवत् या घटा-बढ़ाकर आवश्यकता के अनुकूल कर लिये गये, जिससे समान रूप से सम्पादित होने के कारण उनमें शैली, भाषा, वस्तु-गहन, रंग निर्देश आदि की पर-स्पर समानता बनी रही। अलंकार शास्त्रियो के उद्धरण भी अनेक बार सर्वथा इन रचनाओ में या उनके प्रासंगिक स्थलों से नहीं मिलते। फिर यह भी संभव हे कि प्राकृतों की शैली कालिक विकार से इतना सम्बन्ध न रखती हो जितना स्थानीय विभिन्नता से, जिस कारण वह क्लासिकल नाटकों की प्राकृतों से भिन्न हो सकती है, कुछ पूर्वकालिक होने से नही। प्रोफेसर विन्तरनित्स इन कारणों से इन रचनाओ को भास का नहीं मानते।

डा० कीथ को भास सम्बन्धी यह दृष्टिकोण मान्य नहीं। वे इन नाटकों को भास की ही कृतिया मानते है। उनका कहना है कि इस प्रश्न का इतना महत्व नहीं कि वे कृतियां भास की है या नहीं? उत्तर इस बात का चाहिये कि ये सारी रचनाएँ एक ही व्यक्ति की है या नहीं? और इसका कि वह व्यक्ति मृच्छकटिक और कालिदास का पूर्ववर्ती है या नहीं? 'मृच्छकटिक' का इसलिये कि शूद्रक की यह कृति भास के 'चारुदत्त' का ही संभवतः वृहत्तर संस्करण है। और ये दोनों ही प्रश्न प्रायः अनुकूलार्थ में प्रतिपादित होते है। इन नाटकों को भास

के मानने के विरोधी स्वयं मोरीस्वर्नें ने यह स्वीकार किया है कि 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' का पूर्ववर्ती है

इसमे सन्देह नहीं कि स्वयं कालिदास के वक्तव्य–प्रथित यशसा भाससौमिल्लकवि पुत्रादीनां—के अतिरिक्त यूरोपीय पंडितों मेक्स लिन्देनो, नोबल् आदि—के संस्करण-समीक्षणो से यह प्रमाणित है कि भास सम्बन्धी इन कृतियो की प्राकृत अश्वघोष और कालिदास के बीच के काल की है और यह कि 'चारुदत्त' निश्चय 'मृच्छकटिक' से पुराना है। (नोबल्)

यह सही है कि कुछ उद्धरण गणपति शास्त्री वाले संस्करण से सर्वतः नहीं मिलते पर आखिर पाठभेद भी तो होते हैं। स्वयं कालिदास की कृतियों में परस्पर संस्करण भेद से इतने पाठभेद है कि उनके बाद तो वर्षों उन पर तर्क-वितर्क हुए हैं। रघुवश के 'वंक्षुतीरविचेष्ठनैः' वाले पाठ में तो इतना अन्तर पड़ा है कि पंजाब और वह्लीक (बाल्त्री, आमू तीर का भूमि) एक हो गये हैं और यह दोष मल्लिनाथ के से असाधारण समीक्षक में बन पड़ा है (देखिये 'इण्डिया इन कालिदास' अ० २०–२२)। भास वस्तुतः इतना लोकप्रिय था कि उसके संस्करणों की सीमा न रही हो तो कुछ आश्चर्य नही। इसी कारण पाठभेद हुए होंगे और अलंकार-शास्त्रियों और सुभाषितादिको के उद्धरणों की असमानता इसी कारण है। इस बात को न भूलना चाहिये कि ऐसे श्लोक या स्थल जो गणपति शास्त्री वाले संस्करण में नहीं हैं वे भी भाषा, शैली और ध्वनि में इस संस्करण की भाषा आदि से सर्वथा समान हैं।

इस स्वीकृति के अनुकूल ही एक प्रमाण स्वयं कालिदास के 'माल-

विकाग्निमित्र' में है जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। उस नाटक में (पृ० १७ कालेकर संस्करण) 'प्राश्निक' शब्द का व्यवहार हुआ है। प्राश्निक रंग के विशेषज्ञ थे और उनका काम था कि प्रारम्भिक खेल को देखकर राजा से उसकी स्तुति या निन्दा में अपना निर्णय कहें। भरत ने भी अपने 'नाट्यशास्त्र' में इन राज-विशेषज्ञों व व—प्राश्निकों—का वर्णन किया है। कालिदास को अपनी पहली नाट्यकृति—मालविकाग्निमित्र—के सम्बन्ध में शंका निश्चय रही होगी जो उनके वक्तव्य—ख्यातिलब्ध भास, सौमिल्ल और कविपुत्र के प्रबन्धों (नाटकों) को छोड़ (लांघ कर, निरादर कर) नये नाटक को खेलना कहा तक उचित है?—से स्पष्ट है। परन्तु उन प्राश्निकों न 'मालविकाग्निमित्र' को प्रमाणतः पास कर दिया। इसी प्रसंग में (प्राश्निकों के) भास का नाम लेना विशेष अर्थ रखता है। राजशेखर ने 'स्वप्न वासवदत्ता' की विशेष प्रशंसा की है। वह नाटक ('नाटक' शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में कर रहा हूँ) लगता है, 'प्राश्निक'—पद्धति से प्रमाणित हो चुका था और इसी से विशेषतया राजशेखर (ल० ६०० ई०) आदि की स्तुति का विषय बना था। इसी से संभवतः कालिदास ने उस प्रसग में भास का नाम लिया। अतः उपलब्ध 'स्वप्न वासवदत्ता' को ही भास का प्रसिद्ध नाटक मानना चाहिए। हाँ, उसकी सर्वथा मूल स्थिति में सदियों के व्यवहार ने यदि पाठभेद कर अन्तर डाल दिया हो तो कुछ अजब नहीं, स्वाभाविक ही है।

यह भी जब तब कहा जाता है कि संभव है एक ही बड़े नाटक के, दोनो प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता, पूर्व और परभाग हों। सही प्रतिज्ञायौगन्धरायण में स्वप्नवासवदत्ता के पहले की घटना दी हुई है। उसमें छद्मगज के धोखे से वत्सराज उदयन अवन्ती नरेश प्रद्योत का वन्दी हो जाता है और मन्त्रिवर यौगन्धरायण के प्रण के अनुकूल

प्रद्योतकन्या वासवदत्ता को कौशाम्बी ले भागता है। स्वप्नवासवदत्ता में उसके बाद मगधराज दर्शक की भगिनी पद्मावती से उदयन के विवाह की कथा है और वह विवाह वासवदत्ता के जल भरने के भ्रम में सम्पन्न होता है। पर इसी कारण यह अनिवार्य तर्क नहीं हो सकता कि दोनों कृतियाँ एक ही की अंग हो। उदयन की कथा कला और साहित्य में इतनी प्रसिद्ध और लोकप्रिय थी कि उस प्रसंग की अनेक रचनाए जानी हुई हैं। आज के युग में भी एक ही साहित्यकार ने दो-दो बार उदयन पर लिखा है। स्वयं इन पंक्तियो के लेखक ने अनेक बार वत्सराज के प्रसंग पर कहानी, निबन्ध आदि लिखे हैं। इससे यह मानने में कोई दोष नहीं कि स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञा यौगन्धरायण दोनो स्वतन्त्र कृतियाँ हैं और दोनों ही महाकवि भास की हैं।

भास के ये गणपति शास्त्री वाले तेरह नाटक निम्नलिखित है—

(१) स्वप्नवासवदत्ता, (२) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, (३) अविमारक, (४) चारुदत्त, (५) प्रतिमा, (६) अभिषेक, (७) पंचरात्र, (८) दूतवाक्य, (९) मध्यमव्यायोग, (१०) दूत घटोत्कच, (११) कर्णभार, (१२) ऊरुभङ्ग, और (१३) बालचरित।

इनमें से पहले चार की कथाएँ संभवतः 'बृहत्कथा' से ली गई है। यद्यपि प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता की कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही होगी। चारुदत्त की तो थी ही, जिससे उस छोटे नाटक से तृप्त न होकर परवर्ती शूद्रक ने उसी के आधार पर, उसी के नायक-नायिका, पात्र, कथा लेकर मृच्छकटिक-सा बड़ा नाटक लिखा। ५ और ६ की कथा रामायण से ली गई है, ७ से १२ की महाभारत से और (१३) की कृष्णचरित संबन्धी किसी पुराण से।

स्पष्ट है कि कुशल कलावन्त भास ने रामायण, महाभारत, पुराण और लोक-प्रचलित प्रसंगों को और अधिक लोकप्रिय करने के लिये उन्हें रंगमंच पर उतार दिया। इनमें स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और चारुदत्त मुझे बहुत प्रिय हैं। अविमारक अलौकिक होने के कारण इतना आकृष्ट नही करता। रामायण और महाभारत की कथायें अधिकतर जानी हुई हैं।

प्रस्तुत संग्रह स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायस के अनु-वादो का है। त्रुटिया इनमें अनेक हो सकती है, और आशा करता हूँ कि विज्ञ पाठक मेरा ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करेंगे, जिससे अगले संस्करण मे उन्हे सुधारा जा सके। यदि हिन्दी के पाठको का इस संग्रह से कुछ मनोरंजन हुआ तो लेखक की लेखनी सफल होगी।

—लेखक

हैदराबाद,
१२–१२–५४

स्वप्नवासवदत्ता

स्वप्नवासवदत्ता के पात्र

सूत्रधार	:	नाटक का संचालक
उदयन	:	वत्सदेश का राजा
भट	:	मगधराज के सेवक
यौगन्धनारायण	:	उदयन का प्रधान मंत्री
वासवदत्ता	:	उदयन की पटरानी
कंचुकी	:	अन्तःपुर का सेवक
पद्मावती	:	उदयन की दूसरी पत्नी
चेटी	:	पद्मावती की सेविका
तापसी	:	आश्रमवासिनी स्त्री
धात्री	:	पद्मावती की उपमाता
विदूषक	:	उदयन का मित्र
पद्मनिका	:	मगधराज की सेविकाएं
मधुरिका	:	
वसुन्धरा	:	वासवदत्ता की उपमाता
रैभ्यः	:	अवन्तिराज का कंचुकी
विजया	:	उदयन की प्रतिहारी
ब्रह्मचारी	:	लावणकवासी एक छात्र
तापसी	:	आश्रमवासिनी स्त्री

पहला अंक

स्थापना

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—नवोदित चन्द्रमा के वर्ण की, आसव के कारण शक्ति-
शाली, पद्मा के सयोग से पूर्ण और वसन्त-सी कमनीय
बलराम की भुजाएँ तुम्हारी रक्षा करे

महानुभावो से इस प्रकार निवेदन है·······

आह! यह मेरे विज्ञापन के आरम्भ मे ही क्या सुन
पड़ा? अच्छा, देखता हूँ।[१]

(नेपथ्य में)

मार्ग छोड़े, हटे!, आर्य, मार्ग छोड दे!

सूत्रधार—अच्छा, समझा।

राजकन्या के साथ आने वाले मगधराज के प्रिय अनु-
चर तपोवन के सारे लोगो को धृष्टता-पूर्वक हटा रहे है।[२]

(प्रस्थान)

दो भट—(प्रवेश करके) मार्ग छोड़े, हटे आर्य! मार्ग छोड़ दे!

(परिव्राजक के वेष में यौगन्धरायण और आवन्तिका के वेष में
वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(कान लगाकर सुनता है।) है! यहाँ भी लोग
हटाए जा रहे है!

धीर, बन के फलो से ही सतुष्ट, बल्कलधारी, पूजनीय आश्रमवासियो मे क्यो भय उत्पन्न कर रहे है। अरे, यह कौन अभिमानी, विनय रहित, चचल भाग्य से उत्मत्त जन है जो अपनी आज्ञा से इस तपोवन के साथ गाँव-सा व्यवहार कर रहा है।[3]

वासवदत्ता–आर्य, यह कौन है जो लोगो को हटा रहा है ?

यौगन्धरायण–देवि, वही जो धर्म के मार्ग से अपने को हटा रहा है।

वासवदत्ता–आय, मेरा मतलब उससे नही है। तात्पर्य यह है कि मुझ तक को हटाया जा रहा है।

यौगन्धरायण–देवि, अनजाने देवता इसी प्रकार दूर किये जाते है।

वासवदत्ता–आर्य, थकावट इतना दु ख नही दे रही है जितना यह अपमान दे रहा है।

यौगन्धरायण–यही शक्ति कभी आपकी थी जो आपने अब छोड दी है। अब उसकी चिन्ता न करे। क्योकि–

पहले कभी यथेच्छ करने का सामर्थ्य आप में भी था, और पति के विजयी होने पर एक बार फिर आप प्रशसनीय होगी। क्योंकि काल के अनुसार घूमते हुए पहिए की तीलियों की तरह जगत् का भाग्य भी घूमता है।[4]

दोनों भट–मार्ग छोडे, आर्य ! मार्ग छोड़ दे !

(कंचुकी का प्रवेश)

कचुकी–सम्भषक, इस प्रकार लोगो को न हटाओ, न हटाओ।

देखो, राजा पर दोष न डालना। आश्रमवासियो के प्रति कठोरता का प्रयोग उचित नही। ये मनस्वी नगर के अपमान से बचने के लिए ही जगल मे आ वसे है।[५]

दोनो–आर्य, ऐसा ही होगा।

(प्रस्थान)

यौगन्धरायण–अहा! यह तो समझदार जान पडता है। बेटी, आओ जरा इसके पास चले।

वासवदत्ता–आर्य, ऐसा ही करे।

यौगन्धरायण–(पास पहुँचकर) देखिए, लोग राह से हटाए क्यो जा रहे है?

कचुकी–ओ! तपस्वी।

यौगन्धरायण–(अपने-आप) तपस्वी–यह नाम तो सचमुच सुन्दर है। परन्तु अभ्यस्त न होने से यह नाम मन को रुचता नही।

कचुकी–आर्य, सुने। पिता द्वारा रखे नाम के धारण करने वाले हमारे महाराज दर्शक की भगिनी यह पद्मावती है। हमारे महाराज की माता महादेवी से मिलने आई है जो आश्रम मे रह रही है। उनकी अनुमति से फिर कुमारी राजगृह ही जाएँगी। इससे यह आश्रम मे ही ठहराना चाहती है। तथापि

आप अपनी इच्छानुसार वन से तीर्थजल, समिधा, फूल और दूब लाएँ–क्योकि यही तपस्वियो के धन है। राजपुत्री को धर्म इष्ट है, वह कभी तपस्वियों

मे धर्म का क्षय नही देख सकती—यह उसके कुल की प्रतिज्ञा है।[६]

यौगन्धरायण—(अपने-आप) अच्छा यह बात है। यह वही मगधराज्य की कन्या पद्मावती है जिसके लिए पुष्पकभद्र आदि भविष्य-द्रष्टाओ ने घोषणा की है कि वह हमारे स्वामी की रानी होगी। और जिस प्रकार हमारे सकल्पो से घृणा अथवा मान का उदय होता है, उसी प्रकार इसके मेरे स्वामी की भावीपत्नी होने के कारण इससे मेरी बड़ी ममता हो गई है।[७]

वासवदत्ता—(स्वगत) इसका राजपुत्री होना सुनकर इसके प्रति मेरा भगिनी-सा स्नेह हो रहा है।

(पद्मावती का अपने परिजनों और चेटी के साथ प्रवेश)

चेटी—पधारें, पधारे राजकुमारी। इस आश्रम में प्रवेश करे।

(बैठी हुई तापसी का प्रवेश)

तापसी—स्वागत, राजकुमारी !

वासवदत्ता—(अपने-आप) यही वह राजकुमारी है। इसका रूप इसके आभिजात्य के अनुकूल ही है।

पद्मावती—आर्ये, वन्दे !

तापसी—चिरजीवो। प्रवेश करो बेटी। पधारो। आश्रम वास्तव मे अतिथि के लिए अपना घर ही है।

पद्मावती—धन्यवाद, आर्ये, धन्यवाद ! विश्वस्त हुई। इस आदर भरे वचन से अनुगृहीत हुई।

वासवदत्ता–(अपने-आप) इसका रूप ही नही बल्कि वाणी भी बडी मधुर है ।

तापसी–भद्रे, क्या राजा की इस भगिनी के लिए किसी राजा ने विवाह का प्रस्ताव नही किया ?

चेटी–हाँ, प्रद्योत नाम का उज्जयिनी का राजा है । उसने अपने बेटे की ओर से दूत भेजा है ।

वासवदत्ता–(अपने-आप) भला । तब तो यह मेरी आत्मीया ही है ।

तापसी–इसका रूप है ही उस आदर का पात्र । सुनते है कि दोनो राजकुल महान् हैं ।

पद्मावती–आर्य, क्या आपने ऐसे मुनिजन देखे जो मेरी भेट लेकर मुझे अनुगृहीत करे? इच्छा के अनुकूल मागने वाले तपस्वियो से कहे कि जो कुछ अभिप्रेत हो मुझसे मागे ।

कचुकी–कुमारी की जो इच्छा । हे आश्रम मे रहने वाले तपस्वी लोगो, सुनो ! सुनो ! यह मगधराज की कन्या आपके उपजाए विश्वास से उत्साहित होकर आपको धर्मार्थ भेट लेने के लिए निमन्त्रित करती है ।

किसको कलश चाहिए ? कौन वस्त्र की इच्छा करता है ? गुरु के पास अध्ययन समाप्त कर जो दक्षिणा देना चाहता है, उसे क्या चाहिए ? धर्म जिसे अत्यन्त प्रिय है, ऐसी राजकुमारी आपके अनुग्रह की कामना करती है । जो-जो वस्तु जिसको लेने की इच्छा है । वह बताएँ–आज किसको क्या दे ?[८]

यौगन्धरायण–अच्छा, उपाय सूझा। (प्रगट) हे, मुझे कुछ माँगना है।

पद्मावती–निश्चय ही मेरा तपोवन आना सफल हुआ।

तापसी–इस आश्रम के सभी तपस्वी सतुष्ट है। यह माँगने वाला निश्चय आगन्तुक (अजनबी) है।

कचुकी–आर्य, आपके लिए क्या करे ?

यौगन्धरायण–यह मेरी भगिनी है। इसका पति विदेश गया हुआ है। चाहता हूँ कि देवी कुछ काल तक इसे अपने साथ रखकर इसका परिपालन करे। क्योकि,

मुझे धन, भोग अथवा वस्त्र से कोई प्रयोजन नही
मैने रोजी के लिये यह काषाय वस्त्र नही धारण किया।
यह धीर राजकन्या जिसने अपनी धर्मप्रियता का स्पष्ट
परिचय दिया है, निश्चय मेरी भगिनी के चरित्र की
रक्षा कर सकती है।[९]

वासवदत्ता–(अपने-आप) आर्य यौगन्धरायण मुझे यहां छोडने की इच्छा करते है। ऐसा ही हो, आखिर वह बिना विचारे कुछ न करेंगे।

कचुकी–देवि, उनका मनोरथ तो बहुत बडा है। भला हम किस प्रकार उसे स्वीकार कर सकेंगे ? क्योकि,

धन सुखपूर्वक दिया जा सकता है, प्राण और तप
तक सुख से दिये जा सकते है। सब कुछ प्रसन्नता से दिया
जा सकता है, परन्तु थाती की रक्षा करना बडा कष्टकर
है।[१०]

पद्मावती—आर्य, पहले यह घोषणा करके कि कौन किस वस्तु की इच्छा करता है, अब उस पर विचार करना अनुचित है। जो यह कहता है वही आर्य सम्पन्न करे।

कचुकी—यह वक्तव्य देवी के अनुकूल ही है।

चेटी—स्वामी की कन्या, जो ऐसी सत्यवादिनी है, चिरजीवे!

तापसी—भद्रे, चिरजीवो ?

कचुकी—देवि ? ऐसा ही होगा (**यौगन्धरायण के पास जाकर**) आर्य, देवी आपकी भगिनी का परिपालन स्वीकार करती है।

यौगन्धरायण—उनका अनुगृहीत हूँ। बच्चो, देवी के समीप जाओ।

वासवदत्ता—(**अपने-आप**) उपाय ही क्या है! अभागी जो हूँ, जाना हो होगा।

पद्मावती—अच्छा, अब यह हमारी हुई।

तापसी—जैसी उसकी आकृति है, उससे तो यह भी मेरे मत से राजपुत्री ही जान पड़ती है।

चेटी—आर्या सही कहती है। मुझे भी ऐसा लगता है कि इसने अच्छे दिन देखे हैं।

यौगन्धरायण—(**स्वगत**) आह! आधा भार उतर गया। जैसे मन्त्रियों के साथ निश्चित किया था, ठीक वैसा ही सम्पन्न हो गया। जब मेरे स्वामी फिर से अपने अधिकार स्वायत्त कर लेगे तब देवी को उन्हें लौटा दूंगा, और उस समय

मगध की राजपुत्री मेरा साक्ष्य करेगी। क्योकि,

पद्मावती को हमारे राजा की महिषी होना ही है, ऐसा उन्होने ही भविष्यवाणी की है जिन्होने इस विपत्ति की भी घोषणा की थी। उनका विश्वास करने के कारण ही मैने ऐसा आचरण किया है। निश्चय भाग्य भी समुचित रीति से कहे हुए ऋषि वचनों को मिथ्या नही करता।[११]

(ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी–(ऊपर देखकर) दोपहर हो गई है। बहुत थक गया हूँ। कहाँ विश्राम करूँ ? (घूमकर) अच्छा, देखा। इसे तपोवन ही होना चाहिए। क्योकि,

स्थान को विश्वसनीय मानकर आश्वस्त हिरण निर्भय घूम रहे है। फूल और फलो से लदी डालियों वाले वृक्ष सब की दया से रक्षित है। पीली गायो के दल भी अनेक है और चारो ओर बिना जुते खेत पडे हुए है। अनेक ओर से धुआँ उठ रहा है। निस्सन्देह यह तपोवन ही है।[१२]

अस्तु देखता हूँ (प्रवेश करता है।)

यह मनुष्य तो आश्रम का नही जान पडता। (दूसरी ओर देखकर) परन्तु कुछ तपस्वी भी तो है। उनके पास जाने मे कोई हानि नही। पर यहा तो स्त्रिया है !

कचुकी–निर्द्वन्द्व प्रवेश करे। आश्रम सब का समान रूप से होता है।

वासवदत्ता–हूँ !

पद्मावती—आर्या दूसरे पुरुष का दर्शन अगीकार नही करती। इस थाती की रक्षा निश्चय रूप से करनी होगी।

कचुकी—देखिए, हम आपसे पहले आए है, अतः आतिथ्य स्वीकार करे।

ब्रह्मचारी—(जल पीता हुआ) धन्यवाद! धन्यवाद! थकान दूर हो गई।

यौगन्धरायण—श्रीमान्, कहाँ से आए? कहाँ जायेंगे? आर्य का निवासस्थान कहाँ है?

ब्रह्मचारी—श्रीमान् सुने। राजगृह का रहने वाला हूँ। वेद के विशेष अध्ययन के लिए वत्स देश के लावाएक नामक गाँव मे रहता रहा हूँ।

वासवदत्ता—(स्वगत) अच्छा, लावाएक, लावाएक नाम के उच्चारण से मेरा सताप फिर से नया हो उठा।

यौगन्धरायण—तो क्या विद्याध्ययन समाप्त हो गया?

ब्रह्मचारी—अभी नही।

यौगन्धरायण—यदि अभी अध्ययन समाप्त न हुआ तो चले आने का प्रयोजन क्या था?

ब्रह्मचारी—वहाँ एक अत्यन्त दारुण घटना घटी।

यौगन्धरायण—वह क्या?

ब्रह्मचारी—वहा उदयन नाम का राजा रहता था।

यौगन्धरायण—हाँ, उदयन का नाम तो सुना है। उसका क्या हुआ?

ब्रह्मचारी–अवन्तिराज की वासवदत्ता नाम की कन्या उसकी परमप्रिया पत्नी थी।

यौगन्धरायण–होगी। फिर ?

ब्रह्मचारी–तब उस राजा के शिकार खेलने चले जाने पर गाव मे आग लग जाने से वह जल गई।

वासवदत्ता–(स्वगत) असत्य है, असत्य है। यह मैं मन्द-भागिन अब भी जीवित हूँ।

यौगन्धरायण–उसके बाद ?

ब्रह्मचारी–तब उसकी रक्षा का प्रयत्न करता हुआ यौगन्ध-रायण नाम का सचिव भी उसी अग्नि मे गिर पड़ा।

यौगन्धरायण–सच ही गिर पडा। अच्छा फिर ?

ब्रह्मचारी–तब लौटने पर राजा यह हाल सुनकर उनके वियोग से उत्पन्न दु.ख से दुःखी होकर उसी अग्नि मे प्राण छोड़ने को उद्यत हुआ। तब बड़े यत्न से मन्त्रियों ने उसे रोका।

वासवदत्ता–(स्वगत) जानती हूँ, अपने प्रति आर्यपुत्र का प्रेम जानती हूँ।

यौगन्धरायण–तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी–तब उसके शरीर के पहने हुए जलने से बचे आभूषणों को हृदय से लगाकर राजा मूर्छित हो गया।

सब एक साथ–हाय !

वासवदत्ता–(स्वगत) अब आर्य यौगन्धरायण सन्तोष लाभ करेंगे।

चेटी—भर्तृदारिके (राजकुमारी) आर्या रो रही है।

पद्मावती—स्वभाव से बहुत कोमल है।

यौगन्धरायण—हाँ, निश्चय मेरी भगिनी स्वभाव से ही अत्यन्त भावुक है। फिर उसके बाद ?

ब्रह्मचारी—फिर धीरे-धीरे उसके होश लौटे।

पद्मावती—प्रसन्नता है कि वह जीवित है। उसका मूर्छित होना सुनकर मेरा हृदय शून्य हो गया था।

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब भूमि पर लोटने के कारण धूल से लाल शरीर वाला वह राजा सहसा उठकर, हा वासवदत्ता! हा वासवदत्ता! हा अवन्ति राजपुत्री! हा प्रिये! हा प्रियशिष्या! कहकर देर तक विलाप करता रहा। सक्षेप मे,

अब चक्रवाक अथवा स्त्री से विशेष रूप से वियुक्त दूसरा कोई उसके समान नही है। धन्य है वह स्त्री जिससे उसका पति इस प्रकार प्रेम करता है। पति के स्नेह के कारण वह जलकर भी नही जली।[13]

यौगन्धरायण—सुनिए श्रीमान्, क्या किसी मन्त्री ने उसको प्रकृतिस्थ करने का प्रयत्न न किया।

ब्रह्मचारी—हाँ, रुमण्वत् नाम का एक सचिव था, जिसने उसे प्रकृतिस्थ करने का दृढ़ प्रयत्न किया। क्योकि,

उसने राजा के अनुसरण मे आहार त्याग दिया। उसके निरतर रोते रहने से उसका मुख दुबला हो गया। शरीर के कपडे तक उसने राजा की ही भाति दु खव्यजक

पहिन लिए । दिन-रात वह यत्नपूर्वक राजा की सेवा करता है । यदि कही राजा अपने प्राण त्याग देता तब वह भी अपने प्राण त्यागने से न चूकता ।[१४]

वासवदत्ता—(स्वगत) भाग्यवश आर्यपुत्र अच्छे हाथो में है ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहा ! रुमण्वत् को बडा भार वहन करना पड़ रहा है ।

मै जिस भार को वहन कर रहा हूँ उसमे कुछ आराम है, परन्तु उसके श्रम मे आराम कही नही । क्योकि जिस पर राजा निर्भर करता है, उस पर सभी कुछ निर्भर करता है ।[१५]

(प्रगट) अच्छा, आर्य, राजा क्या अब पूरा स्वस्थ हो गये ?

ब्रह्मचारी—वह तो मै इस समय नही जानता । यहाँ उसके साथ हँसा, यहाँ उससे यह बात कही, यहाँ उसके साथ रात समाप्त की, यहाँ उस पर कोप किया, यहाँ उसके साथ सोया, इस प्रकार विलाप करते हुए राजा को मत्री बडे यत्न से पकडकर बाहर ले जा सके । तब राजा के चले जाने पर वह गाँव चन्द्रमा और तारों के डूब जाने से आकाश की भाँति जब अनाकर्षक हो गया, मै भी चला आया ।

तापसी—वह राजा निश्चय गुणवान् होगा, क्योकि आगन्तुक तक उसकी प्रशंसा करते है ।

चेटी—स्वा कन्ये, क्या किसी अन्य स्त्री को वह स्वीकार कर सकता है ?

पद्मावती–(स्वगत) ठीक यही मेरा हृदय भी पूछता है।
ब्रह्मचारी—आप दोनो से आज्ञा लेता हूँ। अब चलता हूँ।
दोनो–जाएँ, मनोरथ सिद्ध हो ?
ब्रह्मचारी–तथास्तु। (जाता है।)
यौगन्धरायण–साधु, मै भी भगवती की अनुमति से अब जाना चाहूँगा।
कचुकी–भगवती की इच्छा से यह जाना चाहते है।
पद्मावती–आर्य, आपकी भगिनी आपके बिना उत्कण्ठित होगी।
यौगन्धरायण–साधुजनो के हाथ मे होने के कारण उत्कण्ठित नही होगी। (कंचुकी की ओर देखकर) अब चला।
कचुकी–जाएँ, फिर दर्शन दे।
यौगन्धरायण–तथास्तु। (चला जाता है।)
कचुकी–अब भीतर प्रवेश करने का समय हो गया।
पद्मावती–आर्ये, वन्दे।
तापसी–बेटी, अपने ही सदृश तुम्हे पति मिले।
वासवदत्ता–आर्ये, प्रणाम करती हूँ।
तापसी–तुम्हे भी तुम्हारा पति फिर से शीघ्र मिले।
वासवदत्ता–अनुगृहीत हुई।
कचुकी–तब चले। इधर, भगवति! इस समय,

पक्षी बसेरा ले रहे है, मुनिजन जल से तर्पण कर रहे है, अग्नि प्रज्वलित है, धुआँ सारे तपोवन से उठ रहा है। सूर्य भी ऊँचे आकाश से नीचे उतर कर अपनी किरणे बटोर रहा है, और अपना रथ लौटाकर धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर चला जा रहा है।[१६] (सब का प्रस्थान)

दूसरा अंक

प्रवेशक

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—कजरिके ! कजरिके ! स्वामिकन्या पद्मावती किधर है ? किधर ? क्या कहती है ? स्वामिकन्या माधवी लतामण्डप की बगल मे कन्दुक खेल रही है ? तब स्वामिकन्या के पास जाती हूँ ! **(घूमकर देखती हुई)** कुमारी स्वय गेद खेलती हुई उधर आ रही है। उनके कर्णकुडल ऊपर उठे हुए है, व्यायाम से पसीने की बूँदे मुख पर चमक रही है, जिससे मुखश्रम के कारण सुन्दर लग रहा है। अब पास चलती हूँ।

(प्रस्थान)

(गेंद खेलती हुई पद्मावती का सपरिवार वासवदत्ता के साथ प्रवेश)

वासवदत्ता—प्रिय, तुम्हारी गेद यह रही।

पद्मावती—आर्ये, अब बस।

वासवदत्ता—प्रिय, बड़ी देर तक गेंद खेलने से लाल हो जाने के कारण तुम्हारे हाथ दूसरे के से लगते है।

चेटी—खेले, खेले राजकुमारी। कुमारी जीवन का यह रमणीय काल है, उसका सदुपयोग करे।

पद्मावती—आर्ये, इस समय मेरी हँसी करती सी क्यों देख रही है ?

वासवदत्ता–नही, नही प्रिय। आज तुम विशेष सुन्दर लग रही हो। आज मै तुम्हारा सुन्दर मुख सब ओर से देखना चाहती हूँ।

पद्मावती–रहने दे, मेरा उपहास न करे।

वासवदत्ता–अच्छा, महासेन की भावी वधू, मै चुप हूँ।

पद्मावती–यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता–प्रद्योत नाम का उज्जयिनी का राजा। उसकी सेना असीम होने के कारण उसका 'महासेन' नाम पड़ा।

चेटी–उस राजा के साथ हमारी कुमारी सम्बन्ध नही चाहती।

वासवदत्ता–तब किसके साथ चाहती है ?

चेटी–उदयन नाम के वत्सराज के साथ। कुमारी उसके गुणों पर मुग्ध हो गई है।

वासवदत्ता–(स्वगत) सो यह आर्यपुत्र की पति रूप में कामना करती है !

(प्रगट)

किस कारण ?

चेटी–क्योंकि वह अत्यन्त कोमल हृदय है।

वासवदत्ता–(स्वगत) जानती हूँ, जानती हूँ, मै भी कभी इसी प्रकार उन्मत्त हो उठी थी।

चेटी–कुमारी, और यदि कुरूप हुआ तो ?

वासवदत्ता–नही, नही, अत्यन्त दर्शनीय है।

पद्मावती–आर्ये, आप कैसे जानती है ?

वासवदत्ता–(स्वगत) आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात के कारण मैंने

सदाचार की सीमा पार कर दी। अब क्या करूँ ? अच्छा, सूझा उपाय। (प्रगट) ऐसा ही उज्जयिनी के लोग कहते है, प्रिय।

पद्मावती–ठीक ! उज्जयिनी मे उनका होना कुछ दुर्लभ नही। और सुन्दरता सब के लिए समान रूप से अभिराम होती है।

(धात्री का प्रवेश)

धात्री–कुमारी की विजय हो ! कुमारी, तुम्हारी मँगनी हो गई।

वासवदत्ता–किसके साथ, आर्ये ?

धात्री–वत्सराज उदयन के साथ।

वासवदत्ता–वह राजा कुशल पूर्वक तो है ?

धात्री–हाँ, वह कुशल पूर्वक आए और राजकुमारी को उन्होने स्वीकार किया।

वासवदत्ता–कितना बड़ा अहित हुआ !

धात्री–इसमे अहित क्या हुआ ?

वासवदत्ता–कुछ भी नही, यही कि इतना शोक करने के बाद उदासीन हो गए।

धात्री–आर्ये, महापुरुष पहले दुःख से सतप्त हो जाते है परन्तु बाद मे शीघ्र ही प्रकृतिस्थ भी हो जाते है।

वासवदत्ता–आर्ये, क्या उन्होने स्वय ही विवाह का प्रस्ताव किया ?

धात्री–नही, नही। यहाँ वे दूसरे प्रयोजन से आए थे, फिर

महाराज ने स्वय उनके आभिजात्य, ज्ञान, बय और रूप को देखकर यह प्रस्ताव किया।

वासवदत्ता–(**स्वगत**) ऐसा। आर्यपुत्र इसमे सर्वथा निर्दोष है।

(**दूसरी चेटी का प्रवेश**)

चेटी–आर्ये, जल्दी करे, जल्दी करे। आज ही शुभ लग्न है। हमारी स्वामिनी का कहना है कि आज ही विवाह सम्पन्न हो जाना चाहिए।

वासवदत्ता–(**स्वगत**) जितनी ही शीघ्रता ये लोग करते है। मेरा हृदय उतना ही अंधकार से भरता जाता है।

धात्री–चले, कुमारी चले,

(**सब जाते है।**)

तीसरा अंक

(विचारती हुई वासवदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाह के आनन्द से भरे अन्त पुर की चतु शाला मण्डप मे पद्मावती को छोडकर यहाँ प्रमदवन **(नज़र बाग)** मे आई हूँ, जिससे भाग्य के दिए हुए दु खो से अवकाश पाकर मन बहलाऊँ। **(घूमकर)** आह, दु ख की भी सीमा होती है। आर्यपुत्र भी अब दूसरे के हो गए! अब मै बैठ जाऊँ। **(बैठकर)** चक्रवाकी धन्य है जो अपने चक्रवाक से बिछुडकर फिर नही जीती। पर मै अपने प्राण नही छोड पाती। आर्यपुत्र को देख लेने भर के मनोरथ के लिए मै अभागिन जीती हूँ।

(फूल लिए हुए चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्य, आवन्तिका किधर गई? **(घूमकर देखती है।)** ओह, कुहरे मे लिपटे चन्द्रमा की भाँति भद्रवसन पहने चिन्तित हृदय वाली आर्या, प्रियगु लता के नीचे शिला पट्ट पर वह बैठी है। उनके पास चलूँ। **(उसके पास जाकर)** आर्ये आवन्तिके, कितनी देर से आपको ढूँढ रही हूँ।

वासवदत्ता—किसलिए?

चेटी—हमारी भट्टिनी रानी कहती है कि आप महाकुल में

उत्पन्न है, स्नेहशील और चतुर है । अत आर्या ही यह विवाह की माला गूँथे ।

वासवदत्ता–पर किसके लिए गूँथे ?

चेटी–हमारी भर्तृदारिका राजकुमारी के लिए ।

वासवदत्ता–(स्वगत) हाय, यह भी मुझे करना पड़ा ! देवता निठुर है ।

चेटी–आर्ये, इस समय अब कुछ और चिन्ता न करें । मणि-भूमि मे जामाता अब स्नान कर रहा है, इससे शीघ्र माला गूँथ दे ।

वासवदत्ता–(स्वगत) दूसरा कुछ सोच भी तो नही सकती । (प्रगट) भली औरत, क्या तूने जामाता को देखा ?

चेटी–हाँ, देखा राजकुमारी के स्नेह से, अपने कुतूहल से ।

वासवदत्ता–जामाता कैसा है ?

चेटी–आर्गे, सच पूछो तो ऐसा कभी देखा ही नही ।

वासवदत्ता–कह-कह, भली औरत, क्या सुन्दर है ?

चेटी–कह सकती हूँ कि धनुष-वाण से रहित स्वय कामदेव है ।

वासवदत्ता–अच्छा अब बस करो ।

चेटी–क्यो चुप कर रही है ?

वासवदत्ता–इसलिए कि पर पुरुष की प्रशसा सुननो अनुचित है ।

चेटी–अच्छा, आर्ये, शीघ्र माला गूँथ दे ।

वासवदत्ता–हाँ, गूँथती हूँ, लाओ ।

चेटी–आर्या ले ।

वासवदत्ता–(टोकरी को उलटकर फूलों को देखती हुई) इस वन-
स्पति का क्या नाम है ?

चेटी–अविधवाकरण (इसके पहनने से पत्नी विधवा नहीं होती)

वासवदत्ता–(स्वगत) इसे बहुत गूँथूँगी, अपने लिए भी, पद्मावती के लिए भी। (प्रगट) और इस वनस्पति का क्या नाम है ?

चेटी—सपत्नीमर्दन (सौत को डाहने वाली)।

वासवदत्ता–इसे नही गूँथना है।

चेटी–क्यों ?

वासवदत्ता–उसकी पत्नी मर चुकी है, उससे उसका कुछ प्रयोजन नही है।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेटी–जल्दी करे आर्ये, जल्दी करे। जामाता को सुहागिन स्त्रिया विवाह मण्डप मे ले जा रही है।

वासवदत्ता–अरे, करती हूँ ले इसे।

चेटी–ठीक आर्ये, चली मै अब।

(दोनों का प्रस्थान)

वासवदत्ता–चली गईं। घोर अभाग्य है! आर्यपुत्र भी अब दूसरे के हो गए! अब शैया पर चलकर दुख को भुलाऊँ, यदि नीद लग सके।

(प्रस्थान)

चौथा अंक

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(प्रसन्नता से) भाग्य से वत्सराज के मनोवाछित विवाह-मगल के रमणीय दिन देखने को मिले। आह, कौन जानता था कि इस प्रकार के विपत्ति के जल मे गिर जाने पर भी फिर से उद्धार हो सकेगा? इस समय राजप्रासाद मे रह रहा हूँ, अन्त पुर की दीर्घिकाओ मे स्नान करता हूँ, मधुर और सुकुमार लड्डू आदि खाद्य-सामग्री का आहार करता हूँ। वस्तुत. अप्सराओ का सहवास छोड़ उत्तरकुरु के सारे सुख प्रस्तुत है। एक ही महान् दोष है, मेरा आहार जल्दी पचता नही और चूँकि सुन्दर गद्दों और चादरों की शय्या पर भी मुझे नीद नही आती, लगता है कि वात रोग के लक्षण उपस्थित है। पर वास्तव मे बिना अच्छे स्वास्थ्य और अच्छे भोजन के वास्तविक सुख नही।

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—भला आर्य वसन्तक कहाँ होगे? आर्य! (घूमकर देखती हुई) अरे, ये रहे आर्य वसन्तक। आर्य वसन्तक, कब से आपको ढूँढ़ रही हूँ!

विदूषक—भद्रे, मुझे किस निमित्त ढूँढ रही हो?

चेटी—हमारी भट्टिनी पूछती है कि क्या जामाता ने स्नान कर लिया ?

विदूषक—किसलिए पूछती हैं देवी ?

चेटी—भला और किसलिए कि फूल और अंजन लाए जाएँ।

विदूषक— श्रीमान् स्नान कर चुके। देवि, भोजन छोड़कर और सब लाओ।

चेटी—भला भोजन किस कारण मना कर रहे हैं ?

विदूषक—इसलिए कि मुझ अभागे की कोख कोकिला की घूमती आँखों की तरह लगातार घूम रही है।

चेटी—ऐसा ही बराबर होता रहे !

विदूषक—अब जाओ देवि, मैं भी श्रीमान् के पास जा रहा हूँ।

(दोनों जाते हैं।)

प्रवेशक का अन्त

(सपरिवार पद्मावती और आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता का प्रवेश।)

चेटी—भर्तृदारिका का भला किसलिए प्रमदवन में आना हुआ ?

पद्मावती—इसलिए प्रिय, कि देखूँ कि शेफालिका के गुच्छे अभी खिले या नहीं।

चेटी—भर्तृदारिके, वे निश्चय खिल उठे हैं और फूलों से लदे वे मोती की माला में मूँगे जैसे गुँथे हैं।

पद्मावती—प्रिय, यदि ऐसा है तो देर क्यों करती है ?

चेटी—तब भर्तृदारिका इस शिलापट्ट पर क्षण भर बैठें। मैं फूल चुन लाती हूँ।

पद्मावती–आर्ये, क्या यहाँ बैठे ?

वासवदत्ता–बैठे यही।

(दोनों बैठ जाती है।)

चेटी–(वैसा करके) देखे देखे, भर्तृदारिके मेरी अजलि में ये शेफालिका के फूल लाल सखिया के आधे टुकडो से चमक रहे है।

पद्मावती–(देखकर) कितने अद्भुत-अद्भुत फूल है ये ! देखे, आर्ये, देखें।

वासवदत्ता–अहो, कितने सुन्दर फूल है ये ?

चेटी–भर्तृदारिके, क्या और तोड़ूँ ?

पद्मावती–नही, और न तोड़।

वासवदत्ता–क्यो रोकती हो, प्रिय ?

पद्मावती–क्योकि जब आर्यपुत्र यहाँ आकर फूलो को इस समृद्धि को देखेगे तब मै अपना बडा सम्मान मानूँगी।

वासवदत्ता–सखि, पति क्या तुम्हे बहुत प्रिय है ?

पद्मावती–नही जानती आर्ये ! परन्तु आर्यपुत्र के बिना अत्यन्त उत्कठित हो जाती हूँ।

वासवदत्ता–(स्वगत) कितना कष्टकर हो जाता है जब यह भी इस प्रकार कहती है।

चेटी–यह अति उत्तम विचार है जो भर्तृदारिका ने कहा है कि पति मुझे प्रिय है।

पद्मावती–बस मुझे एक ही सन्देह है।

वासवदत्ता–क्या ? क्या ?

पद्मावती–जैसे आर्यपुत्र मेरे है क्या वैसे ही आर्या वासवदत्ता के भी थे ?

वासवदत्ता–उससे कही बढकर।

पद्मावती–तुम कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता–(स्वगत) हूँ, आर्यपुत्र के पक्षपात से सदाचार की सीमा पार कर गई। अब ऐसा कहूँ। (प्रगट) यदि उसका प्रेम कम होता तो वह अपने आत्मीयो को न छोड पाती।

पद्मावती–हो सकता है।

चेटी–भर्तृदारिके, अपने पति से कहो कि मै भी वीणा सीखूँगी।

पद्मावती–कहा मैने आर्यपुत्र से।

वासवदत्ता–तब उन्होने क्या कहा ?

पद्मावती–कहा कुछ नही। केवल दीर्घ नि श्वास छोड़कर चुप हो रहे।

वासवदत्ता–उससे क्या तात्पर्य निकालती हो ?

पद्मावती–तात्पर्य यह निकालती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणो का स्मरण कर प्रसगवश मेरे सामने उन्होने आँसू रोक लिए।

वासवदत्ता–(स्वगत) यदि यह सत्य है तो मै धन्य हूँ।

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

विदूषक–ही ! ही ! गिरे हुए बन्धुजीव कुसुमो और अविरल पवन से प्रमदवन रमणीय हो रहा है। उधर चलें श्रीमान्।

राजा—मित्र वसतक, यह आगया मै ।

जब उज्जयिनी जाने पर मैने अवन्ती की राजकन्या को स्वच्छन्द देखा, तब मेरी अवस्था अकथनीय हो गयी, और तब काम ने मुझ पर अपने पाचो बाण मारे। हृदय आज तक उसकी चोट से व्यथित है, और अब यह चोट पर चोट पडी । यदि मदन के शरो की सख्या पॉच ही है तो यह छठा कहॉ से आ पडा ?[१]

विदूषक—देवी पद्मावती भला कहॉ चली गई ? लता-मण्डप मे तो नही गई, अथवा असन कुसुमों से ढके होने से व्याघ्रचर्म मण्डित दिखनेवाले पर्वत तिलक नामक शिलापट्ट (बेच) पर तो नही जा बैठी। अथवा अत्यन्त कडे गन्ध वाले सप्तच्छद वन मे तो नही जा घुसी ? या कही हिरन और पक्षियो की आकृति से चित्रित दारुपर्वत को तो नही चली गई ? **(ऊपर देखकर)** ही ही, देखे देव, यह शरत् के निर्मल आकाश मे एकत्र उड़ती हुई सारसों की पक्ति बलराम की फैली हुई भुजाओ की भॉति अत्यन्त सुन्दर लगती है ।

राजा—मित्र, देखता हूॅ।

कभी सीधी और फैली हुई, कभी पतली, कभी नीचे उतरती, कभी ऊॅचे चढती, और घूमते समय सप्तर्षिमण्डल की भॉति मुडी हुई केचुलि छोड़े सर्प के उदर की भाति निर्मल आकाश का विभाजन करने

वाली सीमारेखा-सी उन सारसो की पक्ति को देखता हूँ ।[२]

चेटी—भर्तृदारिके, उस कोकनद माला-सी श्वेत और रमणीय, एकत्र उडते सारसो की पक्ति को देखे । अरे, यह तो स्वामी आगए !

पद्मावती—हुँ, आर्यपुत्र ! आर्ये, तुम्हारे कारण मै आर्य पुत्र का दर्शन त्याग रही हूँ । अत हम इस माधवी लता-मण्डप मे प्रवेश करे ।

वासवदत्ता—ऐसा ही हो ।

(वैसा ही करती है ।)

विदूषक—लगता है कि श्रीमती पद्मावती यहा आकर लौट गई ।

राजा—यह कैसे जाना ?

विदूषक—श्रीमान् , इस शेफालिका गुच्छ को देखे जिसके फूल तोड लिये गए है ।

राजा—वसतक, इन फूलो का सौन्दर्य कितना विस्मयकारक है !

वासवदत्ता—(स्वगत) वसतक नाम के उच्चारण से लगता है जैसे मै उज्जयिनी मे ही हूँ ।

राजा—वसतक, उसी शिलातल पर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करे ।

विदूषक—बहुत अच्छा । (बैठकर फिर सहसा उठकर) ही ही, शरत्काल की तीखी धूप असह्य है । इस माधवी लता-मण्डप मे चले ।

राजा—अच्छा, आगे चलो ।

विदूषक—भला ।

(दोनो घूमते है ।)

पद्मावती–यह आर्य वसतक आकुलता के मारे सारा काम चौपट कर देगा। भला अब क्या करे ?

चेटी–भर्तृदारिके, क्या इस लता से लटके मधु के छत्ते को हिलाकर स्वामी को विमार्ग कर दे ?

पद्मावती–ऐसा ही कर।

(चेटी वैसा ही करती है।)

विदूषक–बचाओ, बचाओ ! वही रुके श्रीमान्, वही रुकें।

राजा–क्यो ?

विदूषक–दासीजात भौरे मुझे डक मार रहे है।

राजा–नही नही, मित्र, ऐसा न कहो। मधुकरो को भयातुर न करो। देखो,

मधुमद से कूँजते मधुकरों का मदनदग्ध प्रियाए आलिगन कर रही है। हमारे पैरों की चाप से उद्विग्न होकर वे भी हमारी ही भॉति अपनी कान्ताओ से विरहित हो जाएँगे।[3] अत. यही बैठे।

विदूषक–ऐसा ही हो।

(दोनों बैठते है।)

चेटी–भर्तृदारिके यहॉ तो हम बन्दी हो गये।

पद्मावती–प्रसन्नता है कि आर्यपुत्र बैठे है।

वासवदत्ता–(स्वगत) भाग्यवशात् आर्यपुत्र का शरीर स्वस्थ है।

चेटी–कुमारी, आर्या के नेत्रो मे आसू क्यो है ? मधुकरो के अविनय के कारण काश के फूलो की रज नेत्रों मे गिर पड़ी है, इससे ऑखो मे जल भर गया है।

पद्मावती–सही है ।

विदूषक–यह प्रमदवन बिल्कुल सूना है । कुछ पूछना चाहता हूँ । पूछूं क्या ?

राजा–जैसा चाहो ।

विदूषक–आपको अधिकतर प्रिय कौन है, पहले की वासवदत्ता या आज की पद्मावती ?

राजा–यह पूछकर क्यो मुझे बडे सकट मे डालते हो !

पद्मावती–प्रिय, कितने सकट मे आर्यपुत्र पड़ गये है !

वासवदत्ता–(स्वगत) और भाग्यहीना मैं भी ।

विदूषक–स्वच्छन्द बोले, एक मर चुकी है, दूसरी कही अन्यत्र है ।

राजा–मित्र, नही नही, नही कह सकता, तू बड़ा वाचाल है ।

पद्मावती–आर्यपुत्र के वचन बडे सार्थक है ।

विदूषक–सत्य की सौगन्ध खाता हूँ, किसी से नही कहूँगा । देखिए, यह मैंने जीभ काट ली ।

राजा–नही मित्र, यह नही कह सकता ।

पद्मावती–देखो इसकी मूर्खता ! अब भी यह आर्यपुत्र का हृदय नही जान पाया ।

विदूषक–नही कहेगे ? बिना कहे इस शिलापट्ट से एक डग भी न जाने पायेगे । यहाँ आप मेरे वन्दी है ।

राजा–क्या बलपूर्वक कहलाओगे ?

विदूषक–हाँ, बलपूर्वक !

राजा–अच्छा, तो देखे !

विदूषक–प्रसन्न हों श्रीमान्, प्रसन्न हो। मित्रभाव से प्रार्थना करता हूँ, सच-सच कह दे।

राजा–उपाय ही क्या है? अच्छा सुनो,

यद्यपि रूप, शील और माधुर्य के कारण पद्मावती मुझे बहुत प्रिय है, परन्तु वासवदत्ता मे आसक्ति के कारण मेरे मन को वह हर नही पाती।[४]

वासवदत्ता–(स्वगत) ऐसा ही हो! यह मेरे सारे दुख का बदला मिल गया। अहो! अज्ञातवास मे भी बडे गुण है।

चेटी–भर्तृदारिके, स्वामी अनुदार है।

पद्मावती–नही प्रिय, ऐसा मत कहो। आर्यपुत्र पर्याप्त उदार है, तभी तो अब भी आर्या वासवदत्ता के गुणो का स्मरण कर रहे है।

वासवदत्ता–भद्रे, अभिजात कुल के सदृश ही कहा है।

राजा–मैं तो कह चुका। अब तुम कहो। तुम्हे कौन प्रिय है? तब की वासवदत्ता या अब की पद्मावती?

पद्मावती–आर्यपुत्र ने भी वसन्तक के मार्ग का अवलबन किया!

विदूषक–प्रलाप से क्या लाभ? मेरे लिये दोनो देवियां आदरणीया है।

राजा–मूर्ख, मुझसे बलपूर्वक कहलाकर अब स्वय क्यो नही बोलता?

विदूषक–फिर क्या मुझसे भी बलपूर्वक कहलायेगे?

राजा–और नही तो क्या? हाँ, बलपूर्वक ही।

विदूषक–तब तो सुन चुके !

राजा–प्रसन्न हो, महाब्राह्मण, प्रसन्न हो ! इच्छानुकल ही बोलो।

विदूषक–अच्छा आप सुने। देवी वासवदत्ता मेरी बडी आदरणीया थी। इधर देवी पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, क्रोध और अहकार से रहित, मधुरभाषिणी और उदार है। और उनमे इतना अधिक गुण और है कि स्वादु भोजन लिये पूछती फिरती है–आर्य वसन्तक कहा चले गये ?

वासवदत्ता–(स्वगत) अच्छा, वसन्तक, याद रखना !

राजा–अच्छा, अच्छा, वसन्तक, यह सारा मै देवी वासवदत्ता से कहूँगा।

विदूषक–खेद ! वासवदत्ता ! वासवदत्ता कहाॅ ? वासवदत्ता तो कभी की परलोक गई !

राजा–(दुःखी होकर) सही, वासवदत्ता तो परलोक गई।

अपने इस परिहास से तुमने मेरा मन विक्षिप्त कर दिया, जिससे पहले के अभ्यास से ऐसी बात मुँह से निकल गई।[५]

पद्मावती–सच ही रमणीय कथा-प्रसग इस नृशस ने चौपट कर दिया !

वासवदत्ता–(स्वगत) भला, भला। आश्वस्त हुई। अहा, छिपकर ये बाते सुनना कितना प्रिय है !

विदूषक–धैर्य धारण करे, महाराज, प्रसन्न हो ! दैव बलवान है, अनुल्लघनीय ! इस काल उसका दुर्विपाक यही है।

राजा–मित्र, तुम मेरी दशा नही जानते –

क्योकि बहुमूल (**गहरा पैठा हुआ**) अनुराग भुलाया नही जा सकता, याद से दु ख नित्य नया होता जाता है। यही जीवन का रूप है कि आँसू बहाकर मन दु ख से छूटता और शान्ति लाभ करता है।[६]

विदूषक–अरे, देव का मुख आँसुओ से भीग गया, जाऊँ, मुँह धोने के लिये जल लाऊँ।

पद्मावती–आर्ये, आर्य का मुख आँसुओं से छिप गया है। (**प्रस्थान**) चलो, हम निकल चले।

वासवदत्ता–ऐसा ही हो, अथवा तुम रुक जाओ। उत्कठित पति को छोडकर जाना उचित नही। मै ही चली जाती हूँ।

चेटी–उचित कहा आर्या ने। भर्तृदारिका पास चले।

पद्मावती–क्या सचमुच पास चलूँ ?

वासवदत्ता–हाँ, हाँ, जाओ।

(**पद्मावती का प्रवेश**)

विदूषक–(**कमल-पत्र में जल लिये**) देवी पद्मावती यह रही !

पद्मावती–आर्य वसन्तक, क्या बात है ?

विदूषक–बात यह है, ऐसी बात है–

पद्मावती–बोले, बोले आर्य, बोले।

विदूषक–देवि, राजा का मुख आँसुओ से भीगा है। वायु-चालित काश के फूल के कण आँखो मे पड़ गये है। उनका मुख धोने के लिये यह जल ले चले।

पद्मावती–आह ! उदार स्वामी का परिजन भी उदार होता

है। (पास जाकर) आर्य की विजय हो ! मुँह धोने के लिये यह जल है :

राजा—आह, पद्मावती ! (दूसरी ओर मुँहकर के) वसन्तक, यह क्या ?

विदूषक—(कान मे कहता है) बात यह है।

राजा—भला, वसन्तक, भला (जल पीकर) पद्मावती, बैठो।

पद्मावती—आर्य का जैसा आदेश। (बैठती है)

राजा—पद्मावति !

भामिनि, शरच्चन्द्र के समान काश के श्वेत पुष्पो का वायुचालित रज आँखो मे पड जाने से मुँह आँसुओ से गीला हो गया है।[७]

(स्वगत)

यह नवोढा सत्य सुनकर दुखी हो जायेगी। निसन्देह यह धीर स्वभाव वाली है, पर स्त्रिया तो स्वभाव से ही कातर भी होती है।[८]

विदूषक—उचित है कि इस अपराह्न बेला मे आपको आगे करके मगधराज सुहृज्जनो को दर्शन दे। सत्कार से सत्पालित होकर सत्कार प्रीति उत्पन्न करता है। इससे आर्य उठे।

राजा—सही, ऊँची बात कही। (उठकर)

गुणों से युक्त और सत्कार करने वाले जन लोक मे सुलभ है, पर गुणो के पारखी सर्वथा दुर्लभ है।[९]

(सब का प्रस्थान)

चतुर्थांक समाप्त

पांचवाँ अंक

(पद्मिनिका का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुरिके, मधुरिके, शीघ्र इधर आ !

मधुरिका (प्रवेश कर) यह आई। सखि, क्या करना है ?

पद्मिनिका—अरे! तू क्या जानती नही कि राजकुमारी पद्मावती सिर की पीडा से व्यथित है ?

मधुरिका—हा, धिक् !

पद्मिनिका—शीघ्र जा सखि आर्या आवन्तिका को बुला ला। केवल इतना कहना कि राजकुमारी सिर की पीडा से व्याकुल है और वे अपने-आप आ जायेगी।

मधुरिका—पर वे आकर करेगी क्या ?

पद्मिनिका—क्यों, मधुर कथाये कहकर राजकुमारी की व्याधि हरेगी।

मधुरिका—सच है। अच्छा राजकुमारी की शय्या कहाँ रची है ?

पद्मिनिका—शय्या समुद्रगृह मे बिछी है। तू चली आ अब। मै भी स्वामी के पास खबर भेजने के लिये आर्य वसन्तक की खोज में जाती हूँ।

मधुरिका—भला।

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक को कहाँ ढूँढूँ ?

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—आज नि सन्देह इस शुभघडी और सुख के अवसर पर प्रिया बिछोह से व्याकुल अन्तर वाले वत्सराज के हृदय मे पद्मावती के विवाह रूपी समीर से प्रज्वलित कामाग्नि भडक उठी है। (पद्मिनिका को देखकर) पद्मिनिके, ओ पद्मिनिके, क्या बात है ?

पद्मिनिका—क्यो, आर्य वसन्तक, आपको क्या पता नही कि राजकुमारी पद्मावती सिर की पीड़ा से व्याकुल है ?

विदूषक—नही देवि, सचमुच नही जानता।

पद्मिनिका—अच्छा, स्वामी को खबर दे दे। तब तक मै सिर का लेप लिये झट जाती हूँ।

विदूषक—भला पद्मावती की शय्या कहाँ रची है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह मे !

विदूषक—जाओ देवि ! इतने मे भी श्रीमान को निवेदन करता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रवेशक का अन्त

(राजा का प्रवेश)

राजा—अब यद्यपि काल ने मुझ पर यह विवाह का भार फिर से डाल दिया है, फिर भी मुझे अवन्तिराज की सुकन्या की याद सताती है जिसकी कमनीय काया लावाएक की लपटो मे हिम की मारी नलिनी की भाँति जल गई।[1]

विदूषक (प्रवेशकर) जल्दी करे श्रीमान्, जल्दी !

राजा–क्यों ?

विदूषक–राजकुमारी पद्मावती सिर की पीड़ा से व्याकुल है।

राजा–तुमसे किसने कहा ?

विदूषक–पद्मिनिका ने।

राजा–हा, कष्ट !

यद्यपि पुराना घाव हृदय में दबा सालता था, आज इस रूप-गुणवाली प्रिया की सम्प्राप्ति से वह दुःख कुछ मन्द पड गया था। पर उस पुरानी दु खानुभूति से लगता है, इस पद्मावती की भी वही दशा होगी।[२]

भला पद्मावती है कहाँ ?

विदूषक–उसकी शय्या समुद्रगृह में बिछी है।

राजा–चलो, राह दिखाओ।

विदूषक–चलें, चलें, आर्य।

(दोनों चलते हैं।)

विदूषक–यह रहा समुद्रगृह। आर्य प्रवेश करें।

राजा–पहले तुम प्रवेश करो।

विदूषक–बहुत अच्छा। (प्रवेश कर) अरे विपद् ! ठहरिये, ठहरिये श्रीमान् !

राजा–क्यों ?

विदूषक–यह भूमि पर सर्प लेट रहा है। दीप के आलोक से दिखाई पड गया।

राजा–(प्रवेश कर देखकर, मुस्कराता हुआ) मूढ, इसी को सर्प कहता है !

मूर्ख, तू इस पुष्पमाला को सर्प कहता है जो पहले इस द्वार तोरण से लटक रही थी और अब भूमि पर गिर पडी है। यही निशा की मन्द वायु से हिलती हुई सर्प की सी चेष्टा करती है।[3]

विदूषक–(**ध्यान से देखकर**) सच कहते हैं, देव ! नि सन्देह यह सर्प नही है । (**प्रवेश कर इधर-उधर देखता हुआ**) लगता है, राजकुमारी पद्मावती यहाँ आई और चली गई ।

राजा–नही मित्र, देवी यहाँ आई ही नही ।

विदूषक–आपने जाना कैसे ?

राजा–जानना क्या है ? देखो,

शैय्या जैसी बिछाई थी वैसी ही पडी है । चादर मे तनिक भी सिकुडन नही और न सिर की दवा के लेप से तकिया ही मलिन हुआ है, न बीमार के मन-बहलाव के लिये किसी प्रकार की शोभा हो रची गई है, और निश्चय रुग्ण प्राणी अपने-आप इस प्रकार शय्या छोड़ इतनी जल्दी चला न जायेगा ।[4]

विदूषक–फिर देव थोड़ी देर इस शय्या पर बैठकर देवी के आने की प्रतीक्षा करे ।

राजा–भला (**बैठकर**) मित्र, नीद आ रही है । कोई कथा कहो ।

विदूषक–कहता हूँ । देव हुकार भरते जाएँ ।

राजा–बहुत अच्छा ।

विदूषक–उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। वहाँ रमणीय स्थान है।

राजा–क्या कहा, उज्जयिनी ?

विदूषक–यदि आपको यह कहानी पसन्द न हो तो दूसरी कहानी कहता हूँ।

राजा–यह कहानी अच्छी नही लगती है, ऐसी बात नही। केवल,

मुझे अवन्तिनाथ की कन्या की याद आ रही है जिसने प्रस्थान के समय के प्रेम पूर्ण बन्धुओ के स्मरण से नेत्रो के भरे हुए आँसू मेरे उर पर डाल दिये थे।[५]

कितनी ही बार शिक्षण के समय मेरी ओर देखती हुई उसके हाथों से धनुष छूट जाने से हाथ शून्य में निरुद्देश्य हिला करते थे।[६]

विदूषक–खैर, दूसरी कथा कहता हूँ, ब्रह्मदत्त नाम का नगर है,

राजा–क्या ? क्या ?

विदूषक–**(वही दुहराता है)**

राजा–मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त था, नगर काम्पिल्य ?

विदूषक–राजा ब्रह्मदत्त था, नगर काम्पिल्य।

राजा–हाँ, ऐसा।

विदूषक–खैर! तनिक देव प्रतीक्षा करें, तब तक याद करलूँ। राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य। **(अनेक बार दुहराता है)** अब सुने, ऐ, देव को नीद लग गई! बडी सर्दी है। चलूँ, ओढना लेकर आऊँ।

(आवन्तिका वेश में वासवदत्ता और चेटी का प्रवेश)

चेटी—पधारे, आर्यें पधारे। राजकुमारी के सिर मे बडी पीडा है ।

वासवदत्ता—धिक्! कहाँ है भला पद्मावती की शय्या।

चेटी—समुद्रगृह मे।

वासवदत्ता—अच्छा, आगे चलो।

(दोनों घूमती हैं)

चेटी—समुद्रगृह यह रहा। आर्या प्रवेश करे। इतने में मै सिर का लेप लेकर आई।

वासवदत्ता—देवता मुझ पर कितने निर्दय है! यह पद्मावती भी जो आर्य के विरह-दुःख मे सहायक होती, बीमार पड गई! खैर, प्रवेश करूँ। **(प्रवेश कर इधर-उधर देखती है)** अरे, नौकर कितने लापरवाह है! बीमार पद्मावती के पास केवल दीपक छोड़कर चले गये है। पद्मावती यह सो रही है। तनिक बैठ जाऊँ। पर अलग बैठने से लगेगा कि उसके प्रति मेरा स्नेह घना नही। इससे इस शय्या पर ही बैठूँ। **(बैठती है)** क्या बात है कि इसके पास बैठते आज मेरा हृदय अत्यन्त आह्लादित हो उठता है? इसकी साँस नियमित चल रही है, लगता है, नीरोग हो गई। शय्या के केवल एक भाग मे पडी मानो मुझे आलिगन के लिये बुला रही है। इसलिये लेट जाती हूँ। **(लेट जाती है)**

राजा—**(नींद में)** ओ वासवदत्ता !

वासवदत्ता–(सहसा उठती हुई) अरे ! यह तो आर्यपुत्र है पद्मावती नही। पहचान तो नही ली गई ? सचमुच यदि उन्होंने मुझे देख लिया तब तो आर्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा निष्फल गई।

राजा–हा, अवन्तिराज पुत्रि !

वासवदत्ता–सयोगवश आर्यपुत्र स्वप्न मे बात कर रहे है। यहाँ कोई और नही। फिर मुहूर्त भर यहाँ और ठहरकर हृदय और दृष्टि को सन्तुष्ट करूँ।

राजा–हा प्रिये ! हा प्रिय शिष्ये ! उत्तर दो।

वासवदत्ता–बोलती हूँ, स्वामिन्, बोल रही हूँ।

राजा–क्या तुम कुपित हो ?

वासवदत्ता–नही, नही, दु खी मात्र हूँ।

राजा–जो तुम कुपित नही तो अलकार क्यों उतार दिये है ?

वासवदत्ता–अलकार पहनने से क्या इससे अच्छा होता ?

राजा–विरचिका की याद कर रही हो ?

वासवदत्ता–(सरोष) छि, विरचिका यहाँ भी ?

राजा–फिर मै विरचिका के लिये क्षमा-याचना करता हूँ।

(हाथ फैला देता है।)

वासवदत्ता–देर से बैठी हूँ। कोई देख लेगा। चलूँ। पर चलने से पहले शय्या से लटकते हाथ को पलग पर डाल दूँ।

(वैसा कर के चली जाती है)

राजा–(सहसा उठकर) वासवदत्ता ! ठहरो-ठहरो ! हा, धिक्, जैसे ही मै तेजी से उठा, द्वार की चौखट से टकरा गया।

और अब निश्चित रूप से जानता भी नही कि मेरा मनोरथ सत्य है या स्वप्न ।[७]

विदूषक—(**प्रवेश कर**) ओ, श्रीमान् जग गये ।

राजा—मित्र, सुसवाद सुनो, वासवदत्ता जीवित है ।

विदूषक—खेद ! वासवदत्ता कहा ? वासवदत्ता तो कब की परलोक सिधार चुकी ।

राजा—नही, नही ।

शय्या पर मुझ सोते हुए को जगाकर चली गई। रुमण्वत ने यह कहकर मुझे धोखा दिया कि वह लपटों मे जल मरी ।[८]

विदूषक—आ , ऐसी बात असभव है । आ., जबसे मैंने उदक-स्नान की बात कही तभी से आप देवी को सोचते रहे हैं, उन्ही को अब स्वप्न मे देखा है ।

राजा—यदि यह स्वप्न था तो न जागना ही धन्य होता, और यदि यह भ्रम है तो यह भ्रम सदा बना रहता ।[९]

विदूषक—मित्र, इस नगर मे अवन्ति सुन्दरी नाम की यक्षिणी रहती है। कही वही तुम्हे न दीख गई हो ।

राजा—ना, ना,

नीद से जागकर मैंने उसके मुख को देखा जो आज भी अपने चरित्र की रक्षा करती है । लबी अलके मुँह पर बिखरती थी, नेत्र अजन शून्य थे ।[१०]

और मित्र, देखो, देखो—

मेरी इस भुजा को देखो जिसे देवी ने स्वप्न मे

दबाया था, इस के रोये अब तक खडे है, यद्यपि इसने उसका स्पर्श स्वप्न मे किया था।[११]

विदूषक–अब आप अनर्थ चिन्तन न करे। आइये, चतु शाला मे चले।

(प्रवेश करने पर)

कचुकी–आर्यपुत्र की जय हो ! हमारे महाराज दर्शक ने आप के लिये कहलाया है कि आरुणि पर आक्रमण करने के लिये आपका अमात्य रुमण्वत बडी सेना लेकर उपस्थित है। इसीप्रकार हमारी भी विजयिनी राजदल, हयदल, रथदल, पदाति सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध है। अतः उठे ! और भी,

आपके शत्रु विभाजित कर दिये गये है, आप के गुणो से अनुरक्त आपकी प्रजा आश्वस्त हो गई है; प्रयाण के समय सेना के पृष्ठभाग की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया है। आपके शत्रु की पराजय के निमित्त सारा करणीय मैने कर दिया है, सेना गगा पार भी कर चुकी है और वत्सो का देश प्राय: आपके हाथों मे है।[१२]

राजा–(उठकर) सुन्दर ! और अब उस भयानक कर्म मे दक्ष-आरुणि को तैरते गजाश्वो और तरग-बाणों वाले युद्ध के महासमुद्र मे पकड़कर मार डालूँगा।[१३]

(सब का प्रस्थान)

पांचवाँ अंक समाप्त

छठा अंक

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी–यहाँ कौन है, सुनहरी तोरण द्वार पर कौन नियुक्त है ?

प्रतीहारी–(प्रवेश कर) आर्य, मै हूँ, विजया। क्या करना है ?

कंचुकी–भगवति, उस उदयन से निवेदन करो, जिसका वत्सराज्य की विजय से विशेष उदय हुआ है–महासेन के यहाँ से रैभ्य गोत्र का कचुकी आया है। साथ में देवी अगारवती की भेजी आर्या वसुधारा नाम की वासवदत्ता की धाय भी है। दोनों द्वार पर उपस्थित है।

प्रतोहारी–आर्य, सन्देश के लिये न तो यह उपयुक्त स्थान ही है, न समय ही।

कंचुकी–क्यों स्थान और समय उपयुक्त क्यों नही ?

प्रतीहारी–आर्य सुनें, स्वामी के 'पूर्व प्रासाद' मे कोई आज वीणा बजा रहा था। उसे सुनकर स्वामी ने कहा, 'घोषवती' के स्वर सा लगता है।

कचुकी–अच्छा फिर ?

प्रतीहारी–फिर वहाँ जाकर उन्होने उस पुरुष से पूछा, वीणा कहाँ पाई ? उसने कहा कि नर्मदा के तीर झाडियो मे पड़ी मिली। यदि स्वामी चाहे तो इसे लेले। और जब

वीणा स्वामी के पास लाई गई तब जैसे ही उन्होने उसे अक मे रखा वैसे ही मूच्छित हो गये। जब स्वामी होश मे आये तब आँसू भरे मुँह से बोले–घोषवति, मैने तुझे पाया पर उसे नही देखा। इसी कारण आर्य, अवसर उचित नही। कैसे निवेदन करूँ ?

कचुकी–देवि, कर दो निवेदन। यह सवाद भी उसी से सबन्ध रखता प्रतीत होता है।

प्रतीहारी–जाती हूँ आर्य, निवेदन करने। पूर्वप्रासाद से स्वामी इधर ही आ रहे है। अभी यही निवेदन करूँगी।

कचुकी–ऐसा ही करो, देवि।

(दोनों का प्रस्थान)

मिश्र विष्कम्भक का अन्त

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा–ओ मधुरवादिनि, कहाँ तो तू देवी के स्तन-युगलो और जाँघों पर आश्रय पाती थी, और कहाँ वह चिड़ियों के रज से भरा वन ! भला कैसे तुमने वहाँ दिन बिताए।[1]

तू घोषवति, निश्चय स्नेहहीन है वरना उस तपस्विनी को कैसे नही याद करती ?

भला किस प्रकार वह तुम्हे अपनी जघा पर धारण कर आलिगन करती थी, कैसे थकान के समय तुम्हें हृदय से लगाती थी, मेरे विरह मे तुम से उलाहना देती थी और बजाते हुये बीच-बीच तुमसे बात करती थी, मुस्कराती थी !।[2]

विदूषक—अब, महाराज, काफी हो चुका दुःख-प्रकाशन।

राजा—नही मित्र, ऐसा नही।

वीणा ने मेरी चिर सोई कामना फिर से जगा दी है, पर उस देवी को नही देख पाता जिसे यह घोषवती इतनी प्रिय थी।३।

वसन्तक, शिल्पियो के पास ले जाकर घोषवती का पुनरुद्धार कराओ, और उसे लेकर शीघ्र लौटो।

विदूषक—जैसी आज्ञा। (**वीणा लेकर प्रस्थान**)

प्रतीहारी—(**प्रवेश कर**) स्वामी की जय हो! महासेन के यहाँ रैभ्यगोत्र कचुकी और देवी अगारवती की भेजी वासवदत्ता की आर्या वसुधारा नाम की धाय द्वार पर उपस्थित है।

राजा—तब पद्मावती को बुलाओ।

प्रतीहारी—जैसी स्वामी की आज्ञा। (**प्रस्थान**)

राजा—क्या यह सम्भव है कि यह खबर महासेन को इतनी जल्दी मिल गई हो?

(**पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश**)

प्रतीहारी—पधारे, राजकुमारी, पधारे।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो!

राजा—पद्मावती, क्या तुमने सुना कि महासेन का भेजा कचुकी और अंगारवती की भेजी वासवदत्ता की आर्या वसुधारा नाम की धाय द्वार पर उपस्थित है?

पद्मावती–आर्यपुत्र, अपने सम्बन्धियो की कुशलवार्त्ता सुनकर प्रसन्न होऊँगी।

राजा–देवी ने उचित ही कहा कि वासवदत्ता के स्वजन आपके भी स्वजन है। पद्मावती, बैठो, बैठती क्यो नही ?

पद्मावती–आर्यपुत्र, क्या मेरे पास बैठे ही बैठे उन जनो से मिलेगे ?

राजा–उसमे दोष क्या है ?

पद्मावती–आर्यपुत्र को दूसरी पत्नी के साथ देखकर वे उदास न होगे ?

राजा–पत्नी देखने का जिन्हे अधिकार है उन्हे उस आदर से वचित रखना महादोष है। इससे बैठो।

पद्मावती–आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा। (बैठकर) आर्यपुत्र मेरे पिता या माता का सन्देश भला क्या होगा, मन व्याकुल है।

राजा–है तो ऐसा ही, पद्मावती। क्या कहेगे वे ? उसे सोच-कर मन भर आता है।

उनकी कन्या मै हर लाया, पर उसकी रक्षा कर न सका। जो कुछ गुए थे उन्हे भी चचल भाग्य ने छीन लिया है, इससे कुपित पिता के अपराधी पुत्र-सा भयभीत हूँ।[४]

पद्मावती–काल उपस्थिन होने पर भला कैसे किसी वस्तु की रक्षा की जा सकती है ?

प्रतीहारी–कचुकी और धाय द्वार पर खड़े है।

राजा–उन्हे शीघ्र लाओ ।

प्रतीहारी–जैसी स्वामी की आज्ञा !

(**कंचुकी, धाय और प्रतीहारी का प्रवेश**)

कचुकी–अपने सम्बन्धी के इस राज्य मे आकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, परन्तु अपनी राजपुत्री की मृत्यु की बात याद कर मन विषाद से भर गया है। दैव, तुम क्या नही कर पाते यदि उसका राज्य शत्रुओं द्वारा विजित करा लेते पर उसकी रानी को अकुशल रखते ?[५]

प्रतीहारी–स्वामी ये रहे, आर्य पास आये ।

कचुकी–(**पास जाकर**) आर्यपुत्र की जय हो !

धाया–स्वामी की जय हो !

राजा–(**आदर सहित**) आर्य ! मैंने जिनके साथ मैत्री की कामना की और जो पृथ्वी के राजवशो के उदय और अस्त के कारण है, वे अवन्तिराज सकुशल तो है ?[६]

कचुकी–हाँ, महासेन सकुशल है, और आप सब के कुशलार्थी है ।

राजा–(**आसन से उठकर**) महासेन की क्या आज्ञा है ?

कचुकी–वैदेही पुत्र के सदृश ही यह शिष्टता है, पर महासेन का सन्देश आसन पर बैठे ही बैठे सुने ।

राजा–महासेन की जैसी आज्ञा ! (**बैठ जाता है ।**)

कचुकी–शत्रुओ द्वारा अपहृत राज्य सौभाग्यवश लौट आया; क्योकि,

जो कायर और शक्तिहीन है वे किसी प्रकार का

उत्साह-कार्य नही कर सकते, और राज्यश्री प्राय: केवल उत्साह से ही भोगी जाती है ।[७]

राजा—आर्य, यह सब महासेन के प्रभाव का ही परिणाम है क्योकि,

आरम्भ मे जब मै पराजित हो गया, उन्होने मेरा पुत्रवत पालन किया । मैने उनकी कन्या हरण कर ली पर उसकी रक्षा न कर सका । और अब उसकी मृत्यु सुनकर भी मेरे प्रति उनका आदर पूर्ववत् बना है । स्वय उचित रीति से मेरे वत्सराज्य के लौट आने के कारण भी वही हैं ।[८]

कचुकी—यही महासेन का सदेश है । देवी का सदेश ये कहेगी ।

राजा—हे माता !

माता कुशलपूर्वक तो है, अन्त:पुर की सोलह सखियों मे ज्येष्ठा, नगर की देवी, जो मेरे प्रवास से दु.खार्त्त हो गई थी ?[९]

धात्री—स्वस्थ महिषी स्वामी का सर्वत कुशल पूछती है ।

राजा—सभी कुशल है । यहाँ सब कुशल है, माँ !

धात्री—स्वामी, पर्याप्त हो चुका सन्ताप अब ।

कचुकी—धैर्य धरे, स्वामी । महासेन की कन्या मर कर भी नही मरी, क्योकि आप उसे इस स्नेह से याद करते है ।

मृत्यु के समय कौन किसकी रक्षा कर सकता है ? जब रस्सी ही टूट जाय तब भला घड़े को कौन बचा सकता है ? मनुष्यो और वनस्पतियो दोनों के लिये एक

समान धर्म है वे समय से पनपते है, समय से ही मुरझा जाते है।[१०]

राजा—आर्य, नही नही, ऐसा नही।

भला महासेन की दुहिता, अपनी शिष्या और प्रियतमा रानी को क्यो कर भुला सकता हूँ ? उसका विस्मरण तो जन्मान्तर मे भी नही हो सकता।[११]

धात्री—महिषी ने कहा है—वासवदत्ता अब न रही। मेरे और महासेन के तुम गोपालक और पालक की भाँति प्रिय हो, पहले से ही मनोनीत जामाता हो। इसी विचार से तुम उज्जयिनी लाये भी गये थे। फिर वीणा के बहाने तुम्हे अग्नि को बिना साक्षी बनाये उसे दे भी दिया। पर तुम तो बिना किसी प्रकार की विवाह-क्रिया के चपलता के मारे भाग भी गये। तब तुम्हारा और वासवदत्ता का चित्र बनवाकर हमने विवाह-मगल सम्पन्न किया। अब उसी चित्रफलक को, हम तुम्हारे पास भेज रहे है, जिससे उसे देख सुखी हो।

राजा—देवी ने अत्यन्त स्नेह पूर्ण और अनुकूल बात कही।

उनका यह वाक्य सौ राज्यो के लाभ से भी प्रियतर है, क्योकि हमारे अपराधी होते हुए भी हम दोनो के प्रति अपना स्नेह वह नही भूली।[१२]

पद्मावती—आर्यपुत्र, चित्रगत गुरुजनो को देखकर अभिवादन करना चाहती हूँ।

धात्री—देखो, भर्तृदारिके, देखो। (**चित्र फलक दिखाती है।**)

पद्मावती–(देखकर स्वगत) हूँ, आर्या आवन्तिका के सर्वथा सदृश है ये। (प्रगट) आर्यपुत्र, यह आर्या के सदृश है।

राजा–सदृश ही नही। मुझे तो लगता है, वही है, हाय कष्ट!

भला यह स्निग्ध वर्ण क्योकर दारुण रूप से नष्ट हुआ होगा? अग्नि ने किस प्रकार यह मुख-माधुर्य दूषित कर दिया होगा?।[13]

पद्मावती–आर्यपुत्र का चित्र देखकर कह सकूँगी कि यह आर्या के सदृश है या नही।

धात्री–देखे, देखे, राजकुमारी।

पद्मावती–(देखकर) आर्यपुत्र की प्रतिकृति से समझती हूँ कि इसका आर्या से अच्छा सादृश्य है।

राजा–देवि, मैने देखा कि चित्र देखकर पहले तो तुम प्रसन्न हुई, फिर उद्विग्न। ऐसा क्यो?

पद्मावती–आर्यपुत्र, इस प्रतिकृति के सदृश ही कोई व्यक्ति यहाँ रहता है।

राजा–क्या वासवदत्ता की प्रतिकृति के सदृश?

पद्मावती–हाँ।

राजा–फिर शीघ्र बुलाओ उसे।

पद्मावती–आर्यपुत्र, मेरी कन्यावस्था मे किसी ब्राह्मण ने उसे भगिनी बताकर मुझे सौपा। कहा कि प्रेषितपतिका होने के कारण यह पर-पुरुष का दर्शन नही करती। तब आर्या को मेरे साथ आयी देखकर आर्यपुत्र जान लेगे।

राजा–यदि ब्राह्मण की भगिनी है तो स्पष्ट है कि वह कोई

और है, क्योकि ससार मे ऐसे लोग मिल जाते है जो रूप मे समान दीखते है ।[१४]

प्रतिहारी–(प्रवेशकर) स्वामी की जय हो ! उज्जयिनी से एक ब्राह्मण आया है जो कहता है कि देवी के आश्रय मे मैंने अपनी भगिनी रख दी थी । उसे वापस ले जाने के लिये वह द्वार पर खड़ा है ।

राजा–पद्मावती, क्या यह वही ब्राह्मण तो नही है ?

पद्मावती–हो सकता है ।

राजा–अन्त पुर के आचरण का ध्यान रखते हुए ब्राह्मण को शीघ्र उपस्थित करो ।

प्रतिहारी–जैसी स्वामी की आज्ञा । (प्रस्थान)

राजा–पद्मावती, तुम भी आर्या यहाँ लाओ ।

पद्मावती–आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा ।

(यौगन्धरायण और प्रतिहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण–हे ! (स्वगत)

मैने राजमहिषी को राजा के हित के लिये ही छिपाया, और ऐसा करने में, यह सत्य है कि राजा का ही भला करना मुझे इष्ट था; फिर भी, यद्यपि मेरा कार्य सिद्ध हो गया है, राजा क्या कहेगा ऐसा सोचकर मेरे हृदय मे शका हो रही है ।[१५]

प्रतिहारी–स्वामी यहाँ है । आर्य, समीप पधारें ।

यौगन्धरायण–(पास आकर) जय हो, आपकी जय हो !

राजा–स्वर सुना हुआ सा लगता है । हे ब्राह्मण, क्या आपने

अपनी भगिनी को पद्मावती के पास रख दिया था ?

यौगन्धरायण–हाँ ।

राजा–तब शीघ्र लाओ इनकी भगिनी, शीघ्र ।

प्रतिहारी–जैसी स्वामी की आज्ञा । **(प्रस्थान)**

(पद्मावती, आवन्तिका और प्रतिहारी का प्रवेश)

पद्मावती–आवे, आर्ये आवे । प्रिय सवाद सुनाती हूँ ।

आवन्तिका–क्या ? क्या ?

पद्मावती–तुम्हारे भ्राता आ गये है ।

आवन्तिका–सौभाग्य, जो उन्होने मेरा स्मरण किया ।

पद्मावती–**(पास जाकर)** आर्यपुत्र की जय हो ! धरोहर यह है।

राजा–धरोहर लौटा दो, पद्मावती । या वस्तुत धरोहर साक्षियो के सामने लौटाना चाहिये । यहाँ अब रैभ्य और आर्या साक्षी होगे ।

पद्मावती–आर्य, लें आर्या को ।

धात्री–**(अवन्तिका को गौर से देखकर)** यह क्या ? यह तो भर्तृदारिका वासवदत्ता है !

राजा–क्या महासेन पुत्री ? देवी, पद्मावती के साथ अन्त·पुर मे प्रवेश करो ।

यौगन्धरायण–नही, नही, उसे प्रवेश न कराये । भगिनी है वह मेरी ।

राजा–आपने क्या कहा ? वह महासेन की पुत्री है ?

यौगन्धरायण–हे राजन्,

भरतो के कुल मे उत्पन्न हुए हो, विनीत हो, ज्ञानवान

हो, पवित्र हो। तुम जो राजधर्म के आचार्य हो, बल-
पूर्वक मेरी भगिनी का हरण क्यों करते हो ?[१६]

राजा—अच्छा, तब रूपसादृश्य देखे। तनिक यवनिका हटा दो।

यौगन्धरायण—स्वामी की जय हो !

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो !

राजा—अरे यह तो यौगन्धरायण है,

और यह महासेन पुत्री! यह सत्य है या स्वप्न जो
उसे मैं फिर देख रहा हूँ ? पर तब भी तो मैंने उसे
ऐसे ही देखा था और धोखा खा गया था।[१७]

यौगन्धरायण—स्वामी, देवी को हर लेने का अपराधी मैं हूँ।
स्वामी क्षमा करें। **(राजा के चरणों में गिरता है)**

राजा—**(उठाकर)** आप निश्चय यौगन्धरायण है।

मिथ्या उन्माद द्वारा, युद्धों द्वारा, शास्त्र-विचार द्वारा
और आपके यत्नो द्वारा हम डूबते हुओं की रक्षा हुई है।[१८]

यौगन्धरायण—हम सब स्वामी के भाग्य के अनुगामी है।

पद्मावती—अरे यह तो निश्चय आर्या है। आर्ये, आपके साथ सखी
भाव से व्यवहार करके मैंने शिष्ट आचार का उल्लघन
किया है। क्षमा माँगती हूँ। प्रसन्न हो।

वासवदत्ता—**(पद्मावती को उठाकर)** उठो, उठो, सुहागिन उठो।
जो स्वय सदा अर्थी की सेवा मे लगा रहा है उससे भला
अपराध कैसा ?

पद्मावती—अनुग्रहीत हूँ।

राजा—मित्र यौगन्धरायण, देवी को हटा देने मे तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

यौगन्धरायण—केवल यह कि कौशाम्बी की रक्षा कर सकूँ।

राजा—और उसे पद्मावती के आश्रय मे रखने से क्या तात्पर्य था ?

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्र आदि दैवचिन्तको ने कहा था कि वह आपकी रानी होगी।

राजा—क्या रुमण्वत् इसे भी जानता था ?

यौगन्धरायण—स्वामी, सभी जानते थे।

राजा—रुमण्वत् कितना बडा शठ है !

यौगन्धरायण—स्वामी, रैभ्य और धात्री को आज ही देवी के कुशल-निवेदन के लिये लौट जाने दे।

राजा—नही, नही ! हम सभी देवी पद्मावती के साथ चलेगे।

यौगन्धरायण—स्वामी की जैसी आज्ञा !

(भरतवाक्य)

हिमाचल और विन्ध्याचल के से कुण्डलो से अलकृत इस एक छत्रवाली ससागरा पृथ्वी का सिहवत् हमारे राजा शासन करे ![१९]

(सब का प्रस्थान)

छठा अंक समाप्त

प्रतिज्ञायौगन्धरायण

पात्र-परिचय

यौगन्धरायण	:	(कौशाम्बी के राजा) उदयन का मंत्री। वही पागल (उन्मत्तक) भी।
श्रमणक	:	श्रमणक (भिक्षु) के वेश में उदयन का (दूसरा) मंत्री रुमण्वान्।
विदूषक	:	उदयन का परम मित्र वसंतक।
ब्राह्मण	:	छद्मवेश में यौगन्धरायण का परिजन।
हंसक	:	उदयन की संरक्षा में रहने वाला उपाध्याय।
गात्रसेवक	:	वासवदत्ता के भवन में छिपकर रहने वाला यौगन्धरायण का महावत।
सालक	:	यौगन्धरायण का आदमी।
निर्मुण्डक	:	यौगन्धरायण का प्रतिहार।
महासेन	:	वासवदत्ता का पिता, अवन्ति का प्रद्योत नाम का राजा।
भरत रोहक	:	महासेन का मंत्री।
वादरायण	:	महासेन का कंचुकी।
भट	:	वासवदत्ता का नौकर।
साधारणजन	:	भरतरोहक के दो आदमी।

स्त्री-पात्र

देवी	:	महासेन की अंगारवती नाम की पटरानी।
विजया	:	यौगन्धरायण की प्रतिहारी।

पहला अंक

(नान्दी-गान के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार–इन्द्र को प्रसन्न करने वाले, बालपन मे ही राजा की उपाधि धारण करने वाले, अति पराक्रमी, देवसेना के सेनानी कार्तिकेय शक्ति द्वारा तुम्हारी रक्षा करे।[१]

(घूमकर और नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये, इस ओर पधारो।

(प्रवेश करके)

नटी–आर्य, यह रही मै।

सूत्रधार–आर्ये, कुछ गाओ। फिर हम भी तुम्हारे गीत से प्रमुदित रगशाला मे खेल आरम्भ करे। आर्ये, सोच क्या रही हो ? गाओ न।

नटी–आज मैने सपने मे पिता के कुल को अस्वस्थ देखा। इससे चाहती हूँ कि आर्य कुशल जानने के लिये कोई आदमी भेजे।

सूत्रधार–अच्छा।

हित साधन मे समर्थ जाने हुये जन को भेजूंगा।

(नेपथ्य में)

सालक ! तैयार हो गया ?

सूत्रधार–जैसे पुरुष को यह यौगन्धरायण भेजता है ।[२]

(दोनों का प्रस्थान)

(स्थापना का अन्त)

(यौगन्धरायण का सालक के साथ प्रवेश)

यौगन्ध०–सालक ! तैयार हो गया ?

सालक–आर्य, तैयार हूँ ।

यौगन्ध०–जाना बहुत दूर है ।

सालक–फिर तो और स्नेह से आर्य के आदेश-पालन का सुअवसर मिलेगा ।

यौगन्ध०–जिसका इतना सौहार्द है वह बलवान् नि सन्देह जायेगा । क्योकि–

घने स्नेहियो पर ही दुष्कर कार्य का भार डालना चाहिये, या ऐसो पर जो सद्गुणो के जानकार हो । जो सामर्थ्य खरीदा जाता है वह तो भाग्याधीन होने के कारण क्रम से घटता बढता रहता है ।[३]

वेणुवन के बाद तीनो घने वनो से होकर कल नागवन जाने वाले स्वामी से पहले ही मिलो ।

सालक–आर्य, आपका वह पत्रमात्र ही मुझे रोक रहा है जिसके अधीन सारा कार्य है ।

यौगन्ध०–विजये !

विजया–आई, आर्य !

यौगन्ध०–(प्रवेश कर) विजये, पत्र और रक्षा-सूत्र शीघ्र ला ।

विजया–जैसो आर्य की आज्ञा ! (प्रस्थान)

यौगन्ध०—भला, मार्ग तुम्हारा पहले का देखा है ?

सालक—नही, पहले का सुना हुआ है ।

यौगन्ध०—यह भी मेधावी का लक्षण है। सुनो, हमे सूचना मिली है कि प्रद्योत वनगज का रूप बनाकर बनावटी हाथी द्वारा हमारे स्वामी को छलना चाहता है । इस दशा मे स्वामी की बुद्धि कही भ्रमित न हो जाय । वैसे निश्चय ही प्रद्योत वत्सराज से डरता है । अपनी अक्षौहिणी सेना की दुर्बलता उसने प्रगट कर दी है । क्योकि—

प्रगट है कि उसकी सेना सख्या मे बडी है, पर निश्चय उसमे एकीभाव नही है । उसमे वीरो की सख्या भी पर्याप्त नही और जो है भी वे उसके प्रति विशेष अनुरक्त नही । इसी कारण वह युद्धकाल मे कपट का आश्रय लेता है । पर सच तो यह है कि अनुराग के अभाव मे समूची सेना भी अनुरागहीन नारी की भाँति हेय है ।[४]

विजया—(**प्रवेश कर**) यह है पत्र, स्वामी की माता ने कहा है कि रक्षासूत्र सभी बहुओ के हाथों से शीघ्र ही बन रहा है ।

यौगन्ध०—विजये, महारानी से निवेदन करो कि रक्षासूत्र चाहे सारी बहुओ के हाथो बन रहा हो या एक के उसे शीघ्र दे दे ।

विजया—अच्छा, आर्य । (**प्रस्थान**)

निर्मुण्डक—(**प्रवेश कर**) कल्याण हो, आर्य !

यौगन्ध०—क्या बात है, निर्मुण्डक ?

निर्मुण्डक—आर्य, स्वामी का चरण-सेवक यह हसक आया है।

यौगन्ध०—हसक अकेला कैसे आया ? सालक, तुम इस काल तनिक रुको। फिर तो तुम्हे या तो अतिशीघ्रतर जाना होगा या और ठहर कर।

सालक—आर्य, जैसा आदेश (प्रस्थान)

यौगन्ध०—निर्मुण्डक, हसक को लाओ।

निर्मुण्डक—जैसी आज्ञा, आर्य ! (प्रस्थान)

यौगन्ध०—पहले जो कभी स्वामी से अलग नही हुआ वह हसक अकेला आया है इससे मेरा मन उद्विग्न हो उठा है। क्योकि—

जिसप्रकार परदेश जाकर घर लौटे हुए मनुष्य को अपने कुल-बान्धवो के विषय मे इष्ट-अनिष्ट की शका होती है, उसीप्रकार इस समय मेरी बुद्धि भी शकित है कि स्वामी के सम्बन्ध मे प्रिय सुनूँगा या अप्रिय।[५]

(हंसक और निर्मुण्डक का प्रवेश)

निर्मुण्डक—इधर, इधर आर्य !

हसक—कहाँ है आर्य ? किधर ?

निर्मुण्डक—आर्य यह बैठे है, चलें उनके पास। (प्रस्थान)

हसक—(पास जाकर) आर्य का कल्याण हो !

यौगन्ध०—हसक, स्वामी नागवन नही गये न ?

हसक—स्वामी तो कल ही चले गये, आर्य।

यौगन्ध०—हाय, भेजना निष्फल होगा। हम सच ठगे गये।
फिर है कुछ आशा अथवा आज ही प्राण देना होगा !

हसक–स्वामी जीवित है ।

यौगन्ध०–'जीवित है' ऐसा कहकर तुमने बता दिया कि विपत्ति बड़ी नही । निश्चय स्वामी पकड़ लिये गये ।

हसक–आर्य ने सही जान लिया । स्वामी पकड लिये गये ।

यौगन्ध०–स्वामी कैसे पकडे गये ? शोक! प्रद्योत के भाग्य कि उसने इतना कठिन कार्य सिर पर लिया । आज प्रगट हो गया कि वत्सराज के मत्री असमर्थ और असली है । उस काल अप्रत्याशित कार्यो मे दक्ष रुमण्वान् भला कहाँ चला गया था ? अथवा सवार ही कहाँ चले गये थे ?

(स्वामी के प्रति) अनुरक्त और स्नेही, कुलवान्, श्रमशील गुणी जनो को क्या शत्रुओ ने खरीद लिया ? या वे वन की गहनता मे नष्ट हो गये, या सब के सब घोर युद्ध मे मारे गये ?[६]

हसक–स्वामी यदि सारे योद्धाओ के बीच रहते तो यह विपद् नही आती ।

यौगन्ध०–सारे योद्धाओ के बीच स्वामी नही रहे, इसका क्या अर्थ ?

हसक–आर्य, सुने ।

यौगन्ध०–राह चलने से थक गये है, बैठ जायँ ।

हसक–अच्छा, आर्य । (बैठकर) आर्य, सुने । पौ फटने से तनिक पहले ही, सवारी की सुखकर वेला मे, बालुका तीर्थ (घाट) मे नर्मदा पार कर, सेना को वही रोक, छत्रमात्र

राजचिन्ह से युक्त, गजदल को विमर्दित करने वाली थोडी सेना लेकर मृगपक्ति वाली पगडडी से स्वामी नागवन चले गये।

यौगन्ध०—फिर ? फिर ?

हसक—फिर जिस पर बाण से लक्ष्य किया जा सके, सूर्य के उतना उदित होने पर, उतने ही योजन दूर जाकर जब मदगभीर पर्वत बस कोस रह गया था तभी तालाब की कीचड मे आधी ऊपर निकली चट्टान की भाँति हाथियो के एक भयानक झुण्ड को हमने देखा।

यौगन्ध०—तब ? तब ?

हसक—तब उस गज समूह के विषय मे चिन्तित सेना में आशका उत्पन्न करने वाले उन गजो के बीच से अनर्थ की जड़ एक पदाति सैनिक स्वामी के निकट आया।

यौगन्ध०—ठहरो, उसने निश्चय यही कहा होगा कि यहाँ से कोस भर की दूरी पर मल्लिका और साल वृक्षो से घिरे शरीर वाले नख और दाँत से रहित नीला हाथी मैंने देखा है।

हसक—अरे, आर्य ने जाना कैसे यह ? फिर क्या जानते हुये भी यह अनर्थ हो गया ?

यौगन्ध०—हसक, जानते हुए भी यम बलवान् होता है। कहो, फिर क्या हुआ ?

हसक—फिर उस क्रूर सैनिक को सौ सुवर्णो **(सोने के सिक्के)** द्वारा सम्मानित कर स्वामी ने उससे कहा—निश्चय यह

वही नील कुवलय नाम का चक्रवर्ती हाथी है जिसका वर्णन मैंने हस्तिशिक्षा मे पढा है। अब तुम सब इस गज-दल के विषय मे सतर्क हो जाओ। इस हाथी को मै वीणा-वादन द्वारा वश करके लाता हूँ।

यौगन्ध०—उस काल भला रुमण्वान् ने स्वामी की कैसे उपेक्षा की ?

हसक—नही नही, स्वामी को प्रसन्न करते हुए उस अमात्य ने निवेदन किया—ऐरावत के से गज तक को पकड़ लेना आपके लिये असभव नही, तथापि पूर्णतया अरक्षित होने के कारण अतिरिक्त इसमे और भी दोष है। उस पड़ोसी प्रान्त के लोग निर्लज्ज और बुद्धिहीन है। इससे गजयूथ को पैदल सेना के सुपुर्द कर हम सभी चले, स्वामी अकेले न जायँ।

यौगन्ध०—महाजनो के समान ही रुमण्वान् ने स्वामी से यह कहा। इसीप्रकार की अनिन्द्य स्वामी भक्ति की इच्छा करता हूँ। अच्छा, फिर ?

हसक—फिर अपने जीवन की सौगन्ध से मत्री को लौटा कर नीलवलाटक नामक गज से उतर सुन्दर पाटल नामक घोड़े पर चढ मध्याह्न के पहले ही केवल वीस पदाति सैनिको के साथ स्वामी चले गये।

यौगन्ध०—विजय के लिये ! हा, धिक्कार है ! स्नेह के वश हो पहले की सूचना पर ध्यान नही दिया। उसके बाद ?

हसक—उसके बाद दूगने वेग से मार्ग चलकर सघन सालो की

छाया मे समान रग होने से नीलिमा नष्ट हो जाने के कारण मानो शरीर बिना ही चमकते दाँतो वाले उस दिव्य गज का बनावटी आकार सौ धनुष की दूरी पर लक्षित हुआ।

यौगन्ध०—हंसक, यह कहो कि वह हमारा परिताप था। अच्छा फिर ?

हसक—फिर घोड़े से उतरकर स्वामी ने देवताओ को प्रणाम किया और वीणा हाथ मे ली। तब पीछे से मत्तगज का भारी चिग्घाड सुन पडा, पहले से निश्चित कार्यक्रम के अनुसार।

यौगन्ध०—मत्तगज का चिग्घाड ? अच्छा, फिर ?

हसक—फिर उस चिग्घाड़ को सही-सही समझने के प्रयत्न मे हम सब लगे। इसी बीच शस्त्रधारी महामात्र सैनिको सहित सहसा निकल पडे जिससे उस गज का कृत्रिम स्वरूप खुल गया।

यौगन्ध०—तब क्या हुआ ?

हंसक—तब नाम और कुल के सबोधन द्वारा अपने अभिजात परिजनों को आश्वस्त करते हुये स्वामी ने कहा—'यह निःसन्देह प्रद्योत की चाल है। मेरे पीछे आओ। मै इस विषम शत्रु की चाल को पराक्रम से नष्ट कर दूँगा।' और स्वामी ऐसा कहकर शत्रु सेना में घुस पड़े।

यौगन्ध—घुस पड़े ? वस्तुत· यही उचित था—

अपनी मर्यादा रखने वाला मनस्वी और पराक्रमी

पुरुष ठगे जाने से लज्जित होकर इसके सिवा और कर ही क्या सकता है ?[७]

उसके बाद ?

हसक—उसके बाद इशारे पर चलने वाले अपने सुन्दर पाटल घोड़े की सहायता से अभिप्राय से भी अधिक प्रहार करते हुये भी शत्रुओ की सख्या की अधिकता से अत्यन्त थक गये। साथ के सभी लोग, सिवा मेरे, काम आये। नही, नही, स्वामी के कारण ही मै बच गया। इसप्रकार दिन भर युद्ध करने से थके और अनेक प्रहारो से घायल शरीर वाले स्वामी घोड़े से गिरकर अस्त होते सूर्य की दारुण वेला मे मूर्छित हो गये।

यौगन्ध०—क्या मूर्छित हो गये स्वामी ? अच्छा, फिर ?

हसक—फिर पास के वन से ढेर की ढेर उखाडी दृढ लताओ से साधारण बदियो की भाँति निष्ठुर यंत्रणा के साथ स्वामी बाँध लिये गये।

यौगन्ध०—अरे, स्वामी बाँध लिये गये ? गजेन्द्र की सूंड सी मोटी, कठोर और कसी, प्रबल कन्धो से निकली, बाण फेकने मे अभ्यस्त, धनुष की प्रत्यचा खीचने मे कुशल, द्विजों के चरण-स्पर्श से पावन, आलिगन द्वारा मित्रो का सत्कार करने वाली स्वामी की उन भुजाओं मे वलय की जगह बधन डाल दिये गये।[८]

फिर किस समय स्वामी को होश हुआ ?

हसक—आर्य, उन पापियों का गर्व नष्ट होने के बाद।

यौगन्ध०—भाग्य से शरीरमात्र अपमानित हुआ, तेज नही। फिर ?

हसक—फिर होश मे आये स्वामी को देख वे पापी 'इसी ने मेरे भाई को मारा, इसी ने मेरे पिता को मारा, इसी ने मेरे पुत्र को मारा, इसी ने मेरे मित्र को मारा', इस-प्रकार अनजाने मे स्वामी के पराक्रम का ही बखान करते हुये चारो ओर से उन पर टूट पडे।

यौगन्ध०—तब ?

हसक—तब एक आश्चर्यजनक बात हुई। परस्पर अनुनय से प्रेरित उनमे से एक भयानक अनाचार करने को उद्यत हुआ। दक्षिणाभिमुख स्वामी को उलट कर युद्ध के श्रम से बिखरे उनके रूखे केशो को निष्ठुरता पूर्वक खीचता हुआ वह मारने की इच्छा से करवाल निकाल कर दौडा।

यौगन्ध०—हसक, रुको तनिक। तब तक लबी साँस भर लूँ।

हसक—तब रुधिर से लाल और रपटने वाली भूमि पर अपने ही वेग से फिसल कर वह हत्या के लिये उद्यत नृशस स्वय गिरकर मर गया।

यौगन्ध०—अच्छा, गिर पडा वह पापी ? ओ—

शत्रुओ के आक्रमण और धर्म-सकरता से रहित भली प्रकार रक्षित भूमि आपत्काल मे स्वामी की सभी प्रकार से अपने-आप रक्षा करती है।[१]

हसक—तभी आरम्भ मे ही स्वामी के बर्छे के प्रहार से मूर्छित

प्रद्योत का शालकायन नामक अमात्य 'नही ! नही ! ऐसे दु साहस का काम न करो !' कहता वहाँ आ पहुँचा ।

यौगन्ध०—तब-तब ?

हसक—तब उस परिस्थिति मे दुर्लभ प्रणाम करते हुये उसने स्वामी को बधनमुक्त करा दिया ।

यौगन्ध०—स्वामी बधनमुक्त हो गये ? धन्य, शालकायन धन्य ! परिस्थिति निश्चय शत्रु को भी मित्र बना देती है । हसक, अब तनिक मेरा मन उस चिन्ता से आश्वस्त हुआ । फिर उस महानुभाव ने क्या किया ?

हसक—फिर वह आर्य उपचार सहित अनेक शान्ति वचन स्वामी से बोल, 'गहरे घावो के कारण अन्य वाहन पर जाने में ये असमर्थ है' ऐसा कह, उन्हे पालकी पर चढाकर उज्जयिनी ले गया ।

यौगन्ध०—स्वामी को ले गया ? अरे, यह तो अनर्थ हुआ ।

प्रद्योत का यह मनोरथ तो हम पहले से ही जानते थे । स्वामी मनस्विता के कारण और भी कष्ट पा रहे होगे ।[१०]

और,

अब उस पहले के नगण्य राजा को हमारे नरेन्द्र किस प्रकार देखेगे ? जिसके वचन की कभी अवहेलना तक न की गई, कैसे वे उस नीच की बात सुनेगे ? कभी निष्फल न जाने वाले क्रोध को वे क्योंकर धारण करेगे ?

वस्तुतः पराजित चाहे अपमानित हो या मान प्राप्त करे, झुकना तो उसे पडता ही है।[११]

प्रतीहारी–(प्रवेशकर) आर्य, रक्षा-सूत्र यह रहा।

यौगन्ध०–भाग्य के क्षय से हमारे सारे समयोचित करणीय व्यर्थ हो गये, जैसे युद्ध समाप्त हो जाने से अश्वो के नीराजना आदि मगल कार्य व्यर्थ होकर कौतुक मात्र बह जाते है।[१२]

प्रतीहारी–आर्य, यह रक्षा-सूत्र है।

यौगन्ध०–विजये, रख दो।

प्रतीहारी–स्वामी की माता से क्या निवेदन करूँ?

यौगन्ध०–विजये, यह-वह।

प्रतीहारी–यह क्या?

यौगन्ध०–यह।

प्रतीहारी–कहे, कहे, आर्य, कहे।

यौगन्ध०–इसे छिपाये न रख सकूंगा। स्वामी की माता को बता ही दूं। विजये, जी को शान्त रखो। (कान में कहता है) बात यह है।

प्रतीहारी–सच?

यौगन्ध०–विजये सच ऐसा ही है।

प्रतीहारी–जाती हूँ मन्दभागिनी।

यौगन्ध०–विजये, स्वामी के पकड़ लिये जाने की बात स्वामी की माता से सहसा न कह देना। स्नेह दुर्बल माता के हृदय की रक्षा करनी है।

प्रतीहारी—फिर इस काल कैसे निवेदन करूँ ?

यौगन्ध०—सुनो,

आरम्भ मे युद्ध के दोषों को गिनाकर सशय की भावना उत्पन्न करना फिर जब तुम्हारी बात का अर्थ सन्दिग्ध हो उठे और उससे पुत्र के विनाश की चिन्ता से राज माता का दु:ख बहुत बढ जाय तब वास्तविक बात कहना ।[13]

प्रतीहारी—समझी । (प्रस्थान)

यौगन्ध०—हंसक, ऐसे समय तुम स्वामी के साथ क्यों नही गये ?

हंसक—आर्य, मैने ऐसा करके अपने ऊपर अनुग्रह करना चाहा, परन्तु शालकायन ने कहा कि 'जाओ, और यह वृत्तान्त कौशाम्बी मे कहो ।'

यौगन्ध०—क्या इसका तात्पर्य लोगों में निराशा उत्पन्न करना है या स्नेहीजनो को स्वामी के समीप से हटाने के लिये उसने ऐसा किया ?

हसक—अब क्या ?

यौगन्ध०—वह अपनी सफलता की उदारता प्रदर्शित कर रहा है । उद्योग के आरम्भ में ही सिद्धि मिल जाने से आदमी रमणीय कार्य सम्पादन करने लगता है । तो मेरे लिये अलग से स्वामी ने कुछ नही कहा ?

हसक—कहा, आर्य । स्वामी की प्रदक्षिणा कर जब म चला तब बहुत कहने की इच्छा रखते हुए भी उमड़ते आँसुओं

भरी दृष्टि से स्वामी न केवल इतना कहा–'जाओ, यौगन्ध–'

यौगन्ध०–कहो न, स्पष्ट कहो। यह तो स्वामी का वाक्य है।

हसक–'यौगन्धरायण से मिलो।' बस इतना।

यौगन्ध०–नही, नही। क्या समूचे मत्रिमण्डल को छोड केवल यौगन्धरायण से ही मिलने को कहा?

हसक–और क्या?

यौगन्ध०–विपत्ति का प्रतिकार न करने वाले, स्वामी के अन्न का उपकार न मानने वाले, राजसम्मान का उचित प्रतिफल न देने वाले मुझे ही स्वामी ने मिलने योग्य क्यों माना?

हंसक–मैने सच कहा।

यौगन्ध०–खैर, स्वामी भी मुझ मे अब अन्य व्यक्ति पायेगे।

रिपु के नगर (उज्जयिनी) मे, कारागार मे, या वन म, मर कर अथवा स्वयं बन्धन प्राप्त होकर जहाँ जैसे भी होगा स्वामी से मै मिलूँगा। अपनी विजय मानने वाले उस राजा प्रद्योत को ठगकर स्वामी को जब राज्य दिला लूँगा तब उनके समीप प्रशसा का पात्र बनूँगा।[१४]

(नेपथ्य में)

हाय! हाय! स्वामी।

यौगन्ध०–यह स्त्रियो का यथाशक्ति शोक का प्रतिकार है। वस्तुतः यह मन्त्रियों के ही असामर्थ्य का प्रमाण है।[१५]

प्रतीहारी–(प्रवेशकर) आर्य, राजमाता–

यौगन्ध०–क्या ? क्या ?

प्रतीहारी–आह !

यौगन्ध०–क्या ?

प्रतीहारी–राजमाता ने कहा है ऐसे सुहृदों के होते भी वत्स-राज की यह दशा। इसके प्रतिकार के लिये क्या उपाय करे ? इसके लिये सम्माननीय मित्रों को बुलाना चाहिये। ऐसा सकट उपस्थित होने पर भी जो शोक नही करता, विषम स्थिति उत्पन्न होने पर भी निराश नही होता, ठगे जाकर भी विषाद नही करता, चोट खाकर भी जो प्राण नही छोडता, नि·सन्देह बुद्धिमान् वही है। उसी से पूछती हूँ। मेरे बच्चे का पहले वह मित्र है, फिर अमात्य है। वही मेरा पुत्र मेरे बच्चे को लाये।

यौगन्ध–अहा, राजमाता ने निश्चय राजकुलोचित ही धीर वचन कहा है। उनकी इस सुन्दर प्रवृत्ति की पूजा करता हूँ। विजये, तनिक जल लाना।

प्रतीहारी–आर्य, अभी। (जाकर लौटकर) यह रहा जल।

यौगन्ध०–लाओ। (आचमन करके) विजये, राजमाता ने क्या कहा ?

प्रतीहारी–मेरा पुत्र ही मेरे पुत्र को छुड़ा लाये।

यौगन्ध०–हसक, स्वामी ने क्या कहा ?

हसक–यौगन्ध–यौगन्धरायण से मिलो, बस।

यौगन्ध०–विजये !

राहु से ग्रसे चन्द्रमा की भाँति शत्रु-सेना से ग्रसे राजा को यदि न छुड़ा लिया तो मैं यौगन्धरायण नही ।[१६]

प्रतीहारी—आर्य, निश्चय ऐसा ही होगा । (प्रस्थान)

निर्मुण्डक (प्रवेश करके) आर्य, आश्चर्य हुआ ! स्वामी की शान्ति के निमित्त होने वाले भोज मे आये ब्राह्मणो को देखकर पागल वेशधारी एक ब्राह्मण ने अट्टहास पूर्वक कहा—'मौज से खाये, आप मौज से । इस राजकुल का उत्कर्ष होगा ।' फिर यह कहते ही कहते वह अदृश्य हो गया ।

यौगन्ध०—क्या सच ?

(ब्राह्मण का प्रवेश)

ब्राह्मण—अपना कार्य हो जाने पर आपके योग्य समझ कर इन विशिष्ट वस्त्रो को छोड़ गये है । इन्ही से शरीर ढक-कर भगवान द्वैपायन पधारे थे ।

यौगन्ध०—ऐसा ? द्वैपायन पधारे थे ?

ब्राह्मण—हाँ, ऐसा ही ।

यौगन्ध०—देखूँ फिर ।

ब्राह्मण—देखें आप ।

यौगन्ध०—अरे, यह तो मेरा रूप ही बदल गया ! वाह ! लगता है जैसे स्वामी के निकट पहुँच गया । मुझे उपदेश देने के लिये ही वह इन्हें छोड़ गये हैं ।

उन्मत्त का सा वेश धारण किये वह साधु राजा

को मुक्त करायेगा, साथ ही मुझे भी छिपाए रखेगा।[१७]

प्रतीहारी (प्रवेशकर) आर्य, राजमाता ने कहा है–'अपने पुत्र से मिलना चाहती हूँ।'

यौगन्ध०–अभी, अभी आया। आर्य, (तब तक) शान्ति-गृह मे मेरी प्रतीक्षा करे।

ब्राह्मण–भला ! (प्रस्थान)

यौगन्ध०–हंसक, इस काल विश्राम करो।

हंसक–आर्य, ऐसा ही करूँगा। (प्रस्थान)

यौगन्ध०–विजये, चलो आगे।

प्रतीहारी–जैसी आज्ञा, आर्य।

यौगन्ध०–अरे,

मथे जाने से काठ से आग उपज जाती है, खोदे जाने से भूमि जल प्रदान करती है। उत्साह शील जनों के लिये कुछ भी असाध्य नही। मार्गारूढ़ हो गये लोगो के सभी यत्न सफल हो जाते है।[१८]

(प्रस्थान)

प्रथम अंक समाप्त

दूसरा अंक

(कंचुकी का प्रवेश)

कचुकी—आभीरक ! आभीरक ! जा, महासेन के वचन से प्रतीहाररक्षक से कह—'आज काशिराज के उपाध्याय आर्य जैवन्ति दूत बनकर आये है। सामान्य दूत की भाँति इनका सत्कार न कर विशेष सुख पूर्वक इन्हे ठहराओ। जितना सुन्दर अतिथि सत्कार हो सके उतना करो।' अनुकूल गोत्र वाले राजकुलो से कन्यादान की अभिलाषा से भेजे दूत नित्य आते है, पर महासेन न तो किसी के प्रतिकूल ही कुछ कहते है न किसी पर कृपा ही करते है। इसका अर्थ क्या ? अथवा सच तो यह है कि कन्यादान दैवाधीन है।

क्योंकि—

प्रगट है कि अब तक उस वर का दूत नही आया जिसका इसे वधू होना लिखा है। इसी से राजाओं के गुणों को जानते हुये भी नही जानते हुये से होकर हमारे नरेन्द्र उसी की प्रतीक्षा कर रहे है।[१]

हे अन्त पुर के निवासियो, यह स्थल स्वामी के आगमन से सनाथ हो रहा है। अरे, यह रहे महासेन, यह, यहाँ—

दुर्वाकुर की शोभा को लजाने वाले जड़े नीलम की किरणो से व्याप्त सोने के अगद से कसो भुजाओं और पुष्ट कधो वाले ये इस घने स्वर्णिम ताल वन के एक भाग से ऐसे निकल रहे है जैसे शर-वन से कार्त्तिकेय ।[२]

(प्रस्थान)

(विष्कम्भक का अन्त)

(राजा का सपरिवार प्रवेश)

राजा—मेरे घोडो के खुरो से उठी धूल राजा लोग भृत्यभाव से अपने मुकुटों पर धारण करते है परन्तु उससे मुझे सन्तोष नही होता, क्योकि गज ज्ञान से गर्वीला गुणवान वत्सराज (उदयन) मुझे प्रणाम नही करता ।[३]

बादरायण !

कचुकी—(प्रवेश कर) महासेन की जय हो !

राजा—जैवन्ति को ठहरा दिया ?

कचुकी—ठहरा दिया और उचित सत्कार भी कर दिया ।

राजा—राजवशोचित मर्यादा के पोषक तुमने उचित ही किया । समागत जनो की उपयुक्त पूजा होनी ही चाहिये । कन्या-दान के सम्बन्ध में पूछने पर सभी चुप हो रहते है । (कंचुकी की ओर देखकर) बादरायण ! लगता है, कुछ कहना चाहते हो ।

कचुकी—कोई विशेष बात नही । इसी कन्यादान के ही प्रति मन मे विचार उठा था ।

राजा—फिर छिपा क्यों रखते हो ? सभी तो यही सोच रहे है। कहो न।

कचुकी—महासेन, कहना मुझे यही है। अनुकूल राजकुलो से कन्यादान के निमित्त नित्य दूत आते रहते है पर महासेन कभी न तो किसी को इन्कार करते है न अनुगृहीत करते है। बात क्या है ?

राजा—बादरायण, बात यह है—अत्यन्त गुणवान् वर के लोभ और वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त स्नेह के कारण कुछ निश्चय नही कर पा रहा हूँ।

पहले तो मन से प्रशसनीय कुल की कामना करता हूँ, फिर चाहता हूँ कि वर कोमल हृदय हो, क्योंकि कोमल प्रकृति होना उत्तम गुण है। उसके बाद नारी स्वभाव के डर से चाहता हूँ कि उस में रूप और कान्ति हो, क्योकि स्त्रियाँ केवल गुण से तृप्त नही होती। फिर मुझे उसका वीर्यवान् होना भी अपेक्षित है, क्योकि प्रताप-वान् न होने से युवतियो की रक्षा नही हो सकती।[४]

कचुकी—पर महासेन को छोड़कर और किसी में तो एक में सारे गुण इस काल नही दिखाई पड़ते।

राजा—यही तो चिन्ता है।

कन्या के लिये वर रूपी सम्पत्ति प्रायः पिता के प्रयत्न से ही प्राप्त होती है। शेष सब भाग्याधीन है, जो पहले से नही देखा जा सकता।[५]

कन्यादान के समय मातायें ही अधिक दुखी होती

हैं, इससे देवी को तनिक बुला लो।

कंचुकी—महासेन की जो आज्ञा। (प्रस्थान)

राजा—हे! काशिराज का दूत आने से मुझे शालकायन की याद आ रही है जो वत्सराज को पकडने गया हुआ है। पर भला उस ब्राह्मण ने आज तक कुछ सवाद क्यो नही भेजा!

वह अपनी क्रीडा मे अवश्य सलग्न है। परन्तु उसके जो सचिव है, वे भी यत्न मे निश्चय लगे होंगे।[१]

(सपरिवार देवी का प्रवेश)

देवी—महासेन की जय हो!

राजा—पधारे।

देवी—महासेन की जो आज्ञा। (बैठती है)

राजा—वासवदत्ता कहाँ है?

देवी—वैतालिकी उत्तरा के पास नारदीय वीणा सीखने गई थी।

राजा—उसे गधर्व विद्या से अनुराग कैसे हुआ?

देवी—किसी समय काचनमाला को वीणा सीखते देखकर उसे भी वीणा सीखने की इच्छा हुई।

राजा—बचपन के अनुकूल ही है यह।

देवी—महासेन से कुछ मै भी कहना चाहती हूँ।

राजा—क्या?

देवी—आचार्य की आवश्यकता है।

राजा—जिसका विवाह-काल उपस्थित है, उसे आचार्य से क्या प्रयोजन? पति ही उसे सिखायेगा।

देवी—क्या अभी बच्ची का विवाह-काल आ गया ?

राजा—अरे, नित्य ही तो 'इसे पति को दीजिये, पति को दीजिये' कह कर परेशान करती हो, फिर अब यह दुःख क्यो ?

देवी—उसका विवाह कर देना मुझे अभिप्रेत है, पर भावी वियोग मुझे सतंप्त करता है। फिर उसे किसे दे रहे है?

राजा—अभी तक निर्णय नही किया।

देवी—अब तक भी नही ?

राजा—न देने से लज्जा करती है, देने की बात से मन व्यथित हो उठता है। इस प्रकार धर्म और स्नेह न देने के बीच मे पड़कर माताएँ दुःखार्त्त हो जाती है।[७]

वासवदत्ता अब सर्वथा स्वसुर की सेवा करने की आयु प्राप्त कर चुकी है। उधर आज काशिराज के उपाध्याय आर्य जैवन्ति दूत बनकर आये है और मुझे अपने सुष्ठु आचरण से लुभा रहे है। (स्वगत) कुछ कहा नही। आँखो मे आँसू भरे व्याकुल भला यह किस प्रकार निश्चय करेगी ? भला, मै ही इस से निवेदन करूँ। (प्रगट) सुनते है हम से सबन्ध करने के प्रयोजन से अनेक राजा आये है।

देवी—बात बढाने से क्या लाभ ? जहाँ देने से हम दुखी न हों वहाँ दे दें।

राजा—तुमने तो बड़े कठिन कार्य को खेल ही खेल मे कह दिया, जिस से पीछे उलाहने के लिये तैयार रहूँ। इससे देवी ही स्वय निर्णय करे। सुने—

हमारे सम्बन्धी मगधराज, काशीराज, अंग-राज, सौराष्ट्रनरेश, मिथिलेश, शूरसेन नृपति सभी अपने नाना प्रयोजनों और गुणो से मुझे लुभा रहे है। इनमे से कौन भला तुम्हारी राय मे उचित पात्र है ?[८]

कचुकी—(प्रवेश कर) वत्सराज।

राजा—वत्सराज क्या ?

कचुकी—प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो ! महासेन। शुभ सवाद कहने की आतुरता से क्रम का ध्यान न रहा।

राजा—शुभ सवाद ?

देवी—(उठकर) महासेन की जय हो !

राजा— (सहर्ष) शुभ सवाद के ही योग्य हो देवि ! विराजो।

देवी—जैसी महासेन की आज्ञा। (बैठती है)

राजा—उठो, उठो, आराम से कहो।

कचुकी—(उठकर) श्रीमान् शालकायन ने वत्सराज को बन्दी कर लिया।

राजा—(सहर्ष) क्या कहा आपने ?

कचुकी—श्रीमान् शालकायन ने वत्सराज को पकड़ लिया।

राजा—उदयन को ?

कचुकी—और नहीं तो क्या ?

राजा—शतानीक के पुत्र को ?

कचुकी—निश्चय !

राजा—सहस्रानीक के पोते को ?

कचुकी—उन्ही को !

राजा—कौशाम्बी के प्रभु को ?

कचुकी—सत्य कहा, उन्ही को ।

राजा—गान्धर्व विद्या वाले को ?

कचुकी—ऐसी ही प्रसिद्धि है उसकी ।

राजा—वत्सराज को ही तो ?

कचुकी—और क्या ? वत्सराज को ही ।

राजा—तो क्या यौगन्धरायण मर गया ?

कचुकी—नही, वह कौशाम्बी मे है ।

राजा—यदि ऐसा है, यौगन्धरायण यदि जीवित है, तो वत्सराज बन्दी नही हुआ ।

कंचुकी—महासेन विश्वास करें ।

राजा—उदयन के पकडे जाने की बात जो तुमने कही उस में मुझे विश्वास नही होता, क्योकि

यौगन्धरायण के रहते उसका बन्दी हो जाना मन्दराचल को हथेली पर घुमाने की भाँति है । जिस यौगन्धरायण के युद्ध मे शौर्य का बखान शत्रु तक करते हैं उसकी नीतिमत्ता से हम भी भिज्ञ है ।[१]

कचुकी—महासेन प्रसन्न हों । मै निश्चय वृद्ध हूँ, फिर ब्राह्मण भी । आज तक महासेन के निकट मैने असत्य भाषण नही किया ।

राजा—हाँ, यह तो सही है । अच्छा वह प्रिय दूत कौन है जिसे शालकायन ने भेजा है ?

कंचुकी—दूत नही आया । खच्चर के रथ पर वत्सराज को आगे

बिठाकर अत्यन्त वेग पूर्वक स्वय अमात्य ही आ पहुँचे ।

राजा—इस प्रकार आये । अच्छा ! आज से कवचादि त्याग मेरी सेना सुख से विश्राम करे । आज तक जो राजा छिपे-छिपे मेरे पास दूत भेजा करते थे, वे अब नि.शंक हुये । सक्षेप मे तो यह है कि वस्तुत आज ही मैं 'महासेन' हुआ हूँ ।

देवी—क्या मत्री उसे ले आये है ?

राजा—और क्या ?

देवी—इस कारण अब किसी और को वासवदत्ता को न देगे ।

राजा—युद्ध मे जीता हुआ यह तो मेरा शत्रु है । बादरायण, शालकायन कहाँ है ?

कचुकी—सामने के द्वार पर ठहरे हुए है ।

राजा—जाओ, भरतरोहक से कहो कि अमात्य कुमारवत् विशेष सत्कार के साथ वत्सराज को आगे कर के लाये ।

कचुकी—महासेन की जो आज्ञा ।

राजा—तनिक इधर आओ ।

कचुकी—यह आया ।

राजा—वत्सराज को देखने आये लोगो मे से किसी को न हटाना ।

हमारे नगरवासी अपने कार्यो द्वारा पहले से सुने गये मेरे उस शत्रु को देखे जो अपने ही कृत्यो से यज्ञ के लिये उपस्थित सिह के समान अपने क्रोध को भीतर ही भीतर रोके हुये है ।[10]

कचुकी—महासेन की जो आज्ञा । (प्रस्थान)

देवी—इस राज-कुल के त्कर्ष के अनेक अवसर आये है परन्तु महासेन के लिये इस से बढ-कर प्रीति कर प्रसग नही याद कर पा रही हूँ

राजा—मुझे भी पहले का सुना हुआ इतना प्रीति कर अवसर नही याद आता, जितना वत्सराज का पकडा जाना।

देवी—है तो वत्सराज ही न ?

राजा—और क्या ?

देवी—अनेक राजकुलों से विवाह-सम्बन्ध के संवाद आये सुने गये। पर उसने कभी कोई आदमी नही भेजा।

राजा—देवि, 'महासेन' शब्द मात्र का वह उच्चारण नही करता, सबन्ध की अभिलाषा कैसी ?

देवी—महासेन को कुछ नही गिनता तो या तो बालक है या मूर्ख।

राजा—बालक है। मूर्ख नही।

देवी—फिर इतना गर्व क्यो करता है ?

राजा—वेदमत्रो मे गाये प्रसिद्ध राजर्षि नाम का भरतवश उसे गर्वीला बना रहा है। कुलागत उसकी गाधर्व विद्या उसे अभिमानी बना रही है। यौवन सुलभ उसका रूप उसे मद से भरमा रहा है। वैसे ही उसके नगरवासियो का प्रेम भी उसे आश्वस्त कर रहा है।

देवी—वर के काम्य गुणों से वह युक्त है। किसकी वामता से उसमे यह दोष आ गया है ?

राजा—देवि, क्यों अकारण आश्चर्य कर रही हो ? देखो—

तृणों मे डाली अग्नि के समान अखिल पृथ्वी का दहन करने वाला भरे शासन का तेज बस इसके राज्य की सीमा पर पहुँच कर शान्त हो जाता है।[११]

कचुकी—(प्रवेशकर) महासेन की जय हो ! आदेशानुकूल सत्कार के साथ शालकायन ने प्रवेश किया है। अब वह इस प्रकार निवेदन करते है—भरतकुल मे उपयुक्त होने वाली वत्सराज कुल की दर्शनीय यह घोषवती वीणारत्न है। महासेन इसे ले ले। (वीणा दिखाता है)

राजा—जयमगल के रूप में मैने इसे स्वीकार किया। (वीणा लेकर) यदि घोषवती नाम की वह वीणा है जो—

कानो को मधुर, प्राकृतिक लाल नखो से बजाने के कारण घिसे तारो वाली, ऋषियो द्वारा उच्चरित मत्र विद्या की भॉति गजों के हृदय बरबस वश मे कर लेती है।[१२]

अरे, समर मे जीते रत्नो का अभीष्ट सभोग प्रीतिकर होता है।

बड़ा बेटा गोपालक अर्थशास्त्र के गुणो का प्रेमी है, छोटा अनुपालक व्यायामशील और गाधर्व विद्या का द्वेषी है।[१३]

फिर इसे किसे देना उचित होगा ? देवि, वासवदत्ता वीणा सीख रही है न ?

देवी—हॉ।

राजा—फिर उसी को दे ।

देवी—वीणा पाने पर तो वह और भी उन्मत्त हो उठेगी ।

राजा—खेलने दो, खेल लेने दो उसे । ससुर के घर भला खेलना कहाँ सभव ? बादरायण, है कहाँ वह ?

कचुकी—अमात्य के पास बैठी है ।

राजा—अच्छा, वत्सराज भी वही है ?

कचुकी—पैरो मे बेडी पडी होने और अनेक प्रहारो के कारण चलने मे असमर्थ से शय्या पर डाल और शय्या को कन्धे पर उठाकर बीच के कमरे मे ले गये है ।

राजा—दु ख कि उसे इतने घाव लगे । इसका दोषी उसका प्रगटित तेज है । इस स्थिति मे उसकी उपेक्षा क्रूर ही करेगा । बादरायण, जाओ । भरतरोहक से कहो कि उसके घावो की चिकित्सा हो ।

कचुकी—महासेन की जैसी आज्ञा ।

राजा—अथवा सुनो ।

कचुकी—यह रहा मै ।

राजा—सभी प्रकार से उसका समादर होना चाहिये । उसकी चेष्टा से उसकी रुचि जानी जाय । समाप्त युद्ध की बात उसके सामने न चलाई जाय । भूख आदि का विशेष ध्यान रखा जाय । काल की सूचना स्तुति गान से दी जाय ।

कचुकी—महासेन की जैसी आज्ञा ! (जाकर फिर लौटकर) महासेन की जय हो ! वत्सराज के घावो का उपचार मार्ग मे ही किया जा चुका है । दूसरी बार उपचार के लिये

अभी समय नही हुआ। अभी सूर्य मध्याह्न मे प्रवेश कर रहे है।

राजा–अच्छा, रखा कहाँ है उस मनस्वी को ?

कचुकी–मयूरयष्टिमुख नामक महल मे।

राजा–धिक्कार ! वह स्थान उसके योग्य नही। धूप से रक्षा के लिये उसे काच के फर्श वाले प्रासाद मे रखने की आज्ञा करो।

कचुकी–महासेन की जैसी आज्ञा। (जाकर और लौटकर) महासेन ने जो-जो आज्ञा दी वह सब सपन्न हो गया अमात्य भरतरोहक महासेन से मिलने की प्रार्थना करते है।

राजा–प्रगट है कि वत्सराज का यह सत्कार उसे नही भाता। यही उसकी नीति की इति श्री है। मै ही उसे अनुकूल करूँगा।

देवी–सबन्ध के विषय मे क्या निर्णय किया ?

राजा–अभी कुछ निश्चय नही किया।

देवी–जल्दी की कुछ बात नही। लडकी मेरी अभी नादान है।

राजा–देवी की जैसी इच्छा। अब भीतर चलो।

देवी–जैसी महासेन की आज्ञा। (सपरिवार प्रस्थान)

राजा–(सोचता हुआ) पहले तो इसके प्रति मेरी वैर भावना थी, परन्तु पकड कर लाये जाने से उसके प्रति मै विकारहीन हुआ। युद्ध मे घायल होने से उसकी विपन्नता सुन कर उसके लिये सशक चिन्ता करने लगा हूँ।[१४]

(प्रस्थान)

तीसरा अंक

(भाँड़ के वेष में विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(चारों ओर देखकर) अरे देवकुल के पीठासन पर अपने लड्डू पात्र को रखकर दक्षिणा के पैसो को गिन, बाँध कर छुट्टी पा गया था, पर वह लड्डू का पात्र अब दिखाई नही देता। (सोचता हुआ) अरे, वह तो एक ही लड्डू से सतुष्ट हो गया, अब पीछे-पीछे नही आ रहा है। परकोटे की ऊँचाई के कारण कुत्तों की पहुँच यहाँ नही है। अखड भक्त होने के कारण पथिकों के लोभ की सभावना नही। या शायद मै ही खा गया। फिर उसे उगल डालूँ। हि, हि अरे यह तो भीतर से वृद्ध शूकर की भाति गृद्ध डकार आ रही है अथवा ऐसा समझ कर कि जो लोहित कात्यायिनी का है सब मेरा ही है, कही शकर ने ही तो नही हथिया लिया। (चारो ओर देखकर) है तो यह ब्रह्मचारी पर अनेक रूप से अविनय करता रहता है। अच्छा अब इसे समझूँगा। अरे मेरे लड्डुओ का पात्र तो यहाँ शिवचरणो मे रखा है। इसे ले लेता हूँ। दे दो स्वामी, दे दो मेरा लड्डू का पात्र। स्वामी, भला तुम भी मेरी वस्तु चुराते हो? लगता है, दु खजनित अधकार के कारण अपने चित्रित लड्डू के पात्र को मैने

साफ न देखा। अच्छा तो इसे मॉजकर साफ ही कर डालूँ। वाह रे चित्रकार, वाह ! इतना सुन्दर चित्रित है यह कि जैसे जैसे इसे मॉजता हूँ वैसे ही वैसे यह चमकता जा रहा है। अब इसे पानी से धो डालूँ। अब पानी कहाँ मिले ? अरे! यह सुन्दर शुद्ध तालाब है। अच्छा अब शिव भी मेरी ही भाँति लड्डुओं के इस पात्र से निराश हों !

(नेपथ्य में)

लड्डू ! लड्डू ! अहा हा !

विदूषक—निश्चय इसी पागल ने लड्डुओं का मेरा पात्र लिया है और अब बरसाती गदले फेनिल नाले की जल की भाँति इधर ही दौडा चला आ रहा है। ठहर, ठहर रे पागल ! ठहर ! इसी डडे से तेरा सिर फोडता हूँ।

(पागल का प्रवेश)

पागल—लड्डू ! लड्डू ! अहा हा !

विदूषक—अरे पागल, ला मेरा लड्डुओं का पात्र !

पागल—कौन से लड्डू ? कहाँ है लड्डू ? किसके लड्डू ? ये लड्डू फेंके जाते है या रखे जाते है या खाये जाते है ?

विदूषक—न खाये जाते है, न फैके जाते है।

पागल—यह मेरी जीभ तो खाने के लिये लपलपा रही है।

विदूषक—देख पागल, ला मेरा लड्डुओ का पात्र, वरना दूसरे की वस्तु के लोभ मे पकड़ा जायेगा।

पागल—कौन पकडेगा मुझे ? लड्डू ही मेरी रक्षा करेगे।

विविध मसालो से युक्त, बहुत दिनो के हो जाने से कुछ सूखे इन लड्डुओ को मूल्य देकर अपनी प्रसन्नता के लिये राज प्रसाद से लाया था ।'

विदूषक–अरे पागल, ला मेरा लड्डुओ का पात्र ! इसी की प्रतीति से मुझे उपाध्याय के यहाँ जाना है ।

पागल–मुझे भी इसी के बल से सौ योजन जाना है ।

विदूषक–तू क्या ऐरावत है ?

पागल–निश्चय, मै ऐरावत हूँ । पर तब तक नही जब तक इन्द्र मुझ पर आसन नही जमाते । सुना है, इन्द्र बेड़ियो से जकड़ा हुआ है । फिर तो धारा रूपी बिजली के कोडो के प्रहार से बवडर मे पड़े मेघ-बन्धन को काट दिया जायगा ।

विदूषक–अरे पागल, जो तू मेरा पात्र नही देता तो मै रोता हूँ ।

पागल–रोओ ! रोओ ! चिल्लाओ, विलपो !

विदूषक–अरे ब्राह्मण को न मारो ! ब्राह्मण को न मारो !

पागल–लो मै भी रोता हूँ–इन्द्र बन्दी हो गया ! इन्द्र बन्दी हो गया !

विदूषक–अरे ब्राह्मण को न मारो, ब्राह्मण को न मारो !

(नेपथ्य में)

डरो मत ! डरो मत ! ब्राह्मणोपासक, डरो मत !

विदूषक–चन्द्रमा के आते ही सारे नक्षत्र आ पहुँचे । ब्राह्मण

होना भी पाप है। इच्छा करते ही यह श्रमणक तक हमें अभयदान कर रहा है।

(श्रमणक का प्रवेश)

श्रमणक—डरो मत ! डरो मत ! ब्राह्मणोपासक, डरो मत ! कौन कौन है यहाँ ? किसलिये सब रो रहे है ?

विदूषक—अरे यहाँ क्या श्रमणक ही प्रतिहार का कार्य करता है ? हे श्रमणक ! भगवन् ! इस पागल ने मेरा लड्डुओं का पात्र ले लिया है, देता नही।

श्रमणक—देखूँ तो लड्डुओ को।

पागल—श्रमणक, देखे आप इन्हे !

श्रमणक—थू ! थू !

विदूषक—हरे, इस श्रमणक ने अकारण पागल के हाथ पर 'थू ! थू ! करके मुझ अभागे के लड्डुओं को भ्रष्ट कर दिया। शायद पहले से ही जानता था।

श्रमणक—रे पागल, फेंक दे इन लड्डुओ को, फेंक दे !

कस्थूलिका-फेन से पीले लड्डू पिठ्ठी की अधिकता से बजबजा रहे है। इन से सुरा-सी दुर्गन्ध निकल रही है। सड़ गये है। खाना मत इन्हे, वरना क्षयग्रस्त हो जाओगे।

विदूषक—मै तो इन्हे बेसन का समझ रहा था, इनमे अब तक इसी से जी ललचाया था।

श्रमणक—अरे उन्मत्त उपासक, फेंक इन्हे, फेंक दे ! नहीं फेंकता तो शाप देता हूँ।

पागल–प्रसन्न हो ! प्रसन्न हों ! भगवान् श्रमणक ! शाप न दे। ले ले, इन्हे ले ले !

श्रमणक–ब्राह्मण-उपासक ! देखो, देखो, मेरा प्रभाव !

विदूषक–यह पागल शाप देने को उद्यत इस श्रमणक के भय से पसारी उँगलियों की नोक पर लड्डुओ के पात्र को रखे खड़ा है। अरे पागल, ला, दे मेरा लड्डुओ का पात्र।

श्रमणक–आइये, आइये, श्रीमान्। इन लड्डुओ के बदले मुझे आशीर्वाद देने का अवसर दीजिये।

विदूषक–हि ! हि ! उन लड्डुओ से तो मै अपने-आप आशीर्वाद दे लूँगा। मुझे भी ये एक गृहस्थ के यहाँ से दान मे मिले है, वही अब आप को भेट हो जायेगे। सो तो यह सुफल ही होगा। यह पागल अग्निगृह की ओर जा रहा है। दोपहर हो चुकी है। पहले पहर मे भी यह स्थान प्राय: सुनसान ही रहता है। तब तक मैं भी मार्ग में पड़ने वाले अपने घर में उन दक्षिणा के पैसो को रखता आऊँ। एक को साड़ी से मतलब है दूसरे को उसके दाम से।

(सब अग्निगृह में प्रवेश करते हैं)

यौगन्धरायण–वसन्तक। यह अग्निगृह तो सर्वथा सूना है।

विदूषक–जी हाँ, नि.सन्देह यह है।

यौगन्धरायण–फिर दोनों परस्पर मिल ले।

दोनों–ठीक है। **(गले मिलते हैं)**

यौगन्धरायण–अच्छा, अच्छा। आप दोनों समान रूप से थके है। आप बैठे। आप भी बैठे।

दोनों–अच्छा ।

(सभी बैठते हैं)

यौगन्धरायण–वसन्तक, तुमने स्वामी को स्वयं देखा ?

विदूषक–जी हाँ, वहाँ देखा उन्हे ।

यौगन्धरायण–कष्ट ! रात तो भले प्रकार बीत गई, अब दिन भी इसी प्रकार कुशल पूर्वक बीत जाय तो भला ।

दिन बीतने पर रात की प्रतीक्षा रहती है, शुभ प्रभात मे अगले दिन की चिन्ता हो आती है। परन्तु अनागत अशुभ की प्रतीक्षा करने वालो के लिये तो शान्ति बीते हुये काल को देखकर ही होती है ।[2]

रुमण्वान्–आपने ठीक ही कहा । दिन और रात समान होते भी बन्धन मे पड़े हुओ को तो रात ही विशेष भयानक होती है ।

क्योकि—

व्यवहार मे साधनहीन, समाजविरोधी, प्रातः काल ही दोष देखने वाले शत्रुओं के लिये ही रजनी भयावह होती है ।[3]

यौगन्धरायण–वसन्तक, स्वामी से कुछ बात भी की ?

विदूषक–जी हाँ, वह तो पहले ही आप से कह चुका हूँ । आज उनका चतुर्दशी का स्नान भी मेरे सामने ही हुआ ।

यौगन्धरायण–अच्छा, स्वामी ने स्नान किया ?

विदूषक–हाँ, स्नान किया स्वामी ने ।

यौगन्धरायण–पूजा भी की ?

विदूषक—हाँ, पूजा तो प्रणाम मात्र द्वारा की।

यौगन्धरायण—स्वामी इस चिन्तनीय स्थिति को पहुँच गये!

स्नानान्तर जिसकी पूजा की बेला उपस्थित होने पर नगाड़े बजते थे, काल के प्रतिकूल होने से उसी के तिथि पूजन प्रणाम मात्र द्वारा की जाने वाली पूजा के समय बेड़ियो की झंकार सुनाई देती है।[४]

रुमण्वान्—अब तो आपके प्रयत्न से ही स्वामी को उचित तिथि-सत्कारादि का अवसर मिलेगा।

यौगन्धरायण—वसन्तक, जाओ, फिर स्वामी से मिलो। उनसे निवेदन करना कि वह जो कल चलने के प्रबन्ध की बात थी उसका कल प्रयोग होगा, क्योकि नलागिर (हाथी) के रहने, नहाने, खाने, सोने आदि सभी स्थानो पर जो औषधियाँ फैला दी गई है, उनसे और मन्त्र योग से अपने नैमित्तिक कार्यों मे वह मोहग्रस्त कर दिया गया है। अनुकूल पवन द्वारा महकने योग्य धूप की भी व्यवस्था कर ली गई है। उसके रोष को जगाने वाले प्रतिकूल गजमह का भी प्रबन्ध कर लिया गया है। गजशाला के पास के ही छोटे घर को जला दिया गया है जिस से अभ्यस्त होकर वह गज, हाथियो के लिये स्वाभाविक भय, अग्नि ज्वाला से न डरे। गजपति का चित्त उभ्रान्त करने के लिये मन्दिरों मे शख और नगाड़े रखवा दिये गये है। इन सारे साधनो के बीच होने वाले उस महानाद से घबडा कर प्रद्योत निश्चय स्वामी की शरण आयेगा।

तब शत्रु की अनुमति से बन्धन से छूटकर उसके अधीनस्थ घोषवती (वीणा) को हस्तगत कर स्वामी नलागिरि को वश में कर ले। फिर स्वामी नलागिरि पर ही चढ कर बैठ जायँ।

तदुपरान्त गज को इतने वेग से चलाकर कि शत्रु सेना की पीछा करने की बात मन की मन मे ही रह जाय, सिंहो का गर्जन समाप्त होने के पूर्व ही विन्ध्याचल लाँघ, एक ही दिन मे कठिन कारागार, वन और अपने नगर (कौशाम्बी) तीनो स्थितियो को भोगते हुये (स्वामी) जिस गज के छल द्वारा पकड़े गये उसी के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त कर ले।[५]

रुमण्वान्—वसन्तक, अब क्या सोच रहे हो ?

विदूषक—यही सोच रहा हूँ कि आप लोगो का इतना महान् प्रयत्न कही व्यर्थ न हो जाय ?

दोनो—निश्चय तुम्हारी बात हम नही समझे।

विदूषक—पहले मैं, फिर आप लोग (**पहले मैंने बात बता दी, अब आप जानें**)।

यौगन्धरायण—अच्छा, कार्य बिगडने का कारण क्या है ?

विदूषक—वत्सराज के स्वय कार्यान्तर के कारण।

योगन्धरायण—वह किस प्रकार ?

विदूषक—आप दोनों सुने।

दोनो—हम ध्यान से सुन रहे है।

विदूषक—इसी कालाष्टमी के दिन जो अभी बीती है, आदणोया

वासदत्ता नाम की राजकुमारी धाय के साथ, कचुकी को हटा कर, कन्या का दर्शन निर्दोष होता है। (**अविवाहिता होने के कारण खुले मुँह निकलने में दोष नहीं होता**) इससे (**खुली**) पालकी मे बैठकर परनाला टूट जाने से जल के मारे दुर्गम राज मार्ग को छोड़ जैसे-तैसे कारागार के सामने से भगवती यक्षिणी के स्थान पर पूजन के लिये गई थी।

यौगन्धरायण–फिर ? फिर ?

विदूषक–फिर उस दिन महाराज कारागार के शिवक नामक भीतरी रक्षक को अनुकूल कर बाहर द्वार पर निकल आये थे।

दोनो–तब ? तब ?

विदूषक–तब वाहकों के कधा बदलने के लिये रुकी पालकी में बैठी राजपुत्री को उन्होने खूब देखा।

यौगन्धरायण–फिर ? फिर ?

विदूषक-फिर फिर क्या ? कारागार को ही प्रमदवन (**नज़रबाग**) मान कर प्रेम लीला करने लगे।

यौगन्धरायण–निश्चय उसके प्रति स्वामी में अनुराग उत्पन्न न हुआ होगा।

विदूषक–अरे, अनर्थ तो सघचारी (**अनेक एक साथ आने वाले**) होते है न। ऐसा ही हुआ।

यौगन्धरायण–सखे रुमण्वान्, धीरज धरो। (**लगता है**) इसी वेष मे बुढ़ापा कटेगा।

विदूषक—अरे, मुझ से यह भी उन्होंने कहा कि यौगन्धरायण से कहो कि जो उपाय उन्होंने सोचा है वह मुझे नही रुचता। जाना तो हम लोगो का समान निश्चय है ही, पर विशेष चिन्ता प्रद्योत की अवमानना की होनी चाहिये। कामवश हो गया हूँ, ऐसा न सोचे। इस अपमान के बदले का ही उपाय सोचूँगा।

यौगन्धरायण—अहो, शत्रुजन के उपहास का उपाय! अहो, बुद्धि का विडम्बना! अहो, मित्रो को सन्ताप देने का ढग! अनुचित देश और काल में स्वामी को रगरेलियाँ सूझी है। क्योकि—

अपनी बनाई चटाई से ढकी भूमि पर भी बनाने वाले को घमड हो सकता है, कामदेव को अवलब किये जन के लिये पैरो की बेड़ियों की ध्वनि भी पर्याप्त होती है! कौन है जो कारागार मे रहते भी उद्धार के लिये प्रस्तुत लोगो का 'राजा' शब्द सुनकर भी कामराग में कुशल न होगा? [१]

विदूषक—अरे, स्नेह हमने दिखा दिया। पुरुषोचित सपन्न कर लिया। अब उन्हे छोड़कर चले।

यौगन्ध०—तुम निश्चय वसन्तक हो। वसन्तक, ऐसा कभी न होगा।

दुःख और मदन से सतप्त स्वामी को कैसे छोड़ दें जो काल और मित्रों के उपाय को नही समझता? [२]

विदूषक—ऐसा ही करते-करते बुढापा आजायेगा।

यौगन्ध०—वह नि सन्देह प्रशसनीय हे ।

विदूषक—अच्छा तो तब हो जब सारी दुनिया जान जाय ।

यौगन्ध०—लोक से हमे क्या काम ? स्वामी के हितार्थ यह किया गया है ।

विदूषक—वह भी तो यह नही जानते ।

यौगन्ध०—समय से जान जायेगे ।

विदूषक—वह समय कब आयेगा ?

यौगन्ध०—जब इस आरम्भ की सिद्धि होगी ।

विदूपक—तब उन्ही की इच्छा के अनुकूलल आप राजा को बन्धन से और राजकन्या को अन्त.पुर से (दोनो को) निकाले ।

रुमण्वान्—यह तो आपके विचारने की बात है ।

यौगन्ध०—दोनो को ? अच्छा । यह दूसरी प्रतिज्ञा है—

अर्जुन ने जैसे सुभद्रा का हरण किया, हाथी जेसे पद्मलता का हरण करता है, यदि राजा (स्वामी) ने उस (वासवदत्ता) का हरण न किया तो मै यौगन्धरायण नही ।[८]

और भी,

यदि घोषवती का और उस हाथी का, विशाल लोचनो वाली (वासवदत्ता) और राजा का मैने हरण न किया तो मै यौगन्धरायण नही ।[९]

(कान लगाकर) अरे, शब्द-सा सुन पडता है । पता लगाओ कैसा है ?

विदूषक–अच्छा। **(जाकर और लौटकर)** अरे, दोपहर की गर्मी से थका कोई जन विश्राम के लिये आता दिखता है। अब क्या किया जाय ?

रुमण्वान्–**(इस)** अग्निगृह के चार द्वार हैं। अलग-अलग हो जायँ, एक साथ न रहे।

यौगन्ध०–नही, नही। हमारा साथ न छूटने पाये। हम शत्रु की एकता को तोडे। अपना-अपना कार्य करते रहे।

दोनों–वैसा ही करे। **(दोनों जाते है)**

पागल–हि, हि, राहुचन्द्रमा को ग्रसता है। छोड़ चन्द्रमा को, छोड़। यदि न छोड़ेगा तो तेरा मुँह फाडकर छुडा लूँगा। यह देखो, यह बिगड़ा हुआ घोडा तुडाकर चला आ रहा है। इसी चौराहे **(की ऊँचाई)** पर चढकर बलि का आहार करूँगा। ये है ये राजकन्याये ! मुझे मारती है। मुझे न मारो, न मारो ! क्या कहती है–हमे नृत्य दिखाओ ? देखो, देखो, राजकन्याओ ! ये राजकन्याये ! फिर मुझे लाठी से मारती है। न मारो ! न मारो ! मुझे, वरना मै भी तुम्हे मारूँगा।

(प्रस्थान)

चौथा अंक

(भट का प्रवेश)

भट—कितनी देर से मै जलक्रीडा की अत्यन्त इच्छुक राजकन्या वासवदत्ता के लिये भद्रवती (हथिनी) के महावत गात्रसेवक को ढूंढ रहा हूँ। ओ पुष्पदन्तक ! गात्रसेवक को देखा ? क्या कहते हो—गात्रसेवक कडिल कलाल के घर जाकर सुरा पी रहा ? अच्छा, तुम जाओ। (घूमकर) यही कडिल कलाल (सुंडी) का घर है। तब तक इसे पुकारूँ। हे गात्रसेवक ! गात्रसेबक !

(नेपथ्य में)

कौन इस काल राजमार्ग मे 'गात्रसेबक ! गात्र-सेवक !' कहकर मुझे पुकार रहा है ?

भट—यह गात्रसेवक (रहा) सुरा पीता-पीता, हँसता-हँसता, झूमता-झूमता जवा कुसम की भाँति लाल-लाल आँखे किये चला रहा है। इसके सामने न ठहरूँ। (घूम कर खड़ा हो जाता है)

(बताये रूप में गात्रसेवक का प्रवेश)

गात्रसेवक—कौन इस काल इस राजमार्ग मे 'गात्रसेवक ! गात्र-सेवक !' कहकर मुझे पुकार रहा है ? मदिरालय से निकलते मुझे मेरे अप्रसन्न ससुर ने देख लिया है। अमृत-

सुरा के चषक और घी-मिर्च-नमक मे भुने मास खण्ड को मुँह मे दिये हुये था। पुत्रवधू भी प्रसन्न हो जाती यदि पी लेती। (पर) सास तो निश्चय डडे मारने को तैयार हो जाती।

सुरा पीकर मत्त होने वाले धन्य है! सुरा के अनुरक्त (लिपटे हुये) धन्य है! सुरा से भीगे हुये (स्नान किये हुये) धन्य है! सुरा से सज्ञा खोकर होश मे लाये जाने वाले धन्य है![1]

अभागे वे मूढ नर है जो अपने पुत्र-कलत्र के नाना कष्टों और विपत्तियों को झेलते हुए और समृद्ध होते भी सुरा का तालाब नही बहा देते! मै तो मानता हूँ कि उनके लिये यमलोक मे दूसरा नरक नही।

भट—(पास जाकर) हे गात्रसेवक! कब से तुम्हे खोज रहा हूँ। जलक्रीड़ा के लिये आतुर राजकन्या वासवदत्ता की (हथिनी) भद्रवती नही दिखाई पड़ती। और तू यहाँ प्रमत्त होकर इधर-उधर टकरा रहा है।

गात्रसेवक—सच है। वह भी मतवाली है, वह पुरुष भी मत्त है, मै भी मत्त हूँ, तू भी उन्मत्त है, सभी मतवाले हो गये है!

भट—अब की बात अभी रहने दो। राजप्रासाद मे आसन न रखकर तुम क्यो इधर-उधर भटक रहे हो?

गात्रसेवक—मै यही घूमूँगा, यही पीऊँगा, इसी द्वारा पीऊँगा। तुम मत बोलो। करोगे क्या?

भट—अच्छा, काफी पी गया, असमद्ध प्रलापा, अब शीघ्र भद्र-
वती को ले आ।

गात्रसेवक—आजा, आजा, भद्रवती। अरे, मैंने तो भद्रवती का
अकुश ही गिरवी रख दिया!

भट—स्वभाव से ही विनीत भद्रवती के लिये अकुश की क्या
आवश्यकता! जा, जल्द ले आ भद्रवती को।

गात्रसेवक—आजा, आजा, भद्रवती। अरे, मैंने तो भद्रवती की
कॉटों की शृंखला ही गिरवी रख दी।

भट—फूलो से बाँधी जा सकने वाली भद्रवती को कॉटों की
शृंखला की क्या आवश्यकता? जल्दी भद्रवती को ले आ।

गात्रसेवक—आजा, आजा भद्रवती। अरे, मैंने तो भद्रवती का
घटा ही गिरवीरख दिया।

भट—जलक्रीडा की कामना करने वाली भद्रवती को घटे की
क्या आवश्यकता? जल्द ले आ भद्रवती को।

गात्रसेवक—आजा, आजा, भद्रवती। अरे, मैंने तो भद्रवती का
हौदा ही गिरवी रख दिया।

भट—हौदा का क्या करना? जल्दी भद्रवती को ले आ।

गात्रसेवक—आजा, आजा, भद्रवती। अरे, बुरा हुआ!

भट—अरे, क्या बुरा हुआ?

गात्रसेवक—अरे, मुझसे बुरा हुआ!

भट—क्या हुआ तुझसे?

गात्रसेवक—बुरा हुआ हाय भद्र—

भट—भद्र क्या कहता है?

गात्रसेवक–बुरा हुआ ! भद्रवती ।

भट–क्या भद्रवती ?

गात्रसेवक–भद्रवती को भी गिरवी रख दिया ।

भट–इसमे तेरा अपराध नही । निश्चय कडिल कलाल का अपराध है जो राजवाहन (हथिनी) लेकर सुरा देता है ।

गात्रसेवक–बुरा कहा मैने । मूल का ही नाश मत कर दो ।

भट–अरे, यह शब्द कैसा है ?

गात्रसेवक–अरे, समझा, समझा । कडिल कलाल का घर तोड़-कर भद्रवती भाग रही है ।

भट–क्या कहते हो ? (आकाश में) यह स्वामी वत्सराज वासवदत्ता को लेकर निकल गये ।

गात्रसेवक–(सहर्ष) स्वामी (की यात्रा) निर्विघ्न हो !

भट–पी, पी । अब उन्मत्त की भाँति भटक !

गात्रसेवक–अरे कौन उन्मत्त है ? किसका मद ? अरे हम तो आर्य यौगन्धरायण द्वारा अपने-अपने स्थान पर नियुक्त गुप्तचर है । तब तक मै भी अपने मित्रो को सूचित कर दूँ । और ये तुम्हारे मित्र बन्धन मुक्त काले साँपो की भाँति इधर से उधर भाग रहे है । हे मित्रो, सुने, सुने, आप–

जो स्वामी के दिये आहार के लिये युद्ध नही करता वह कुश से युक्त पवित्रजल से भरा पात्र नही पाता, नरक जाता है ।[२]

कहाँ है आर्य यौगन्धरायण ? (देखकर) यहाँ हैं श्रीमान् आर्य यौगन्धरायण ।

वह चमकती तलवार धारण किये, पागल का वेष त्याग, बाये हाथ मे स्वर्णखचित ढाल लिये, सिर पर लम्बे वस्त्र की पीली पगडी बाँधे ऐसे लग रहे है जैसे चन्द्रमा को अपने आच्छादन से किंचित् खोले हुए विद्युत् धारी बादल।[3]

अरे महायुद्ध शुरू हो गया !

गजारोहियों सहित गजों और अश्वारोहियो सहित अश्वो को मारकर क्षणभर मे समूची अक्षौहिणी का नाशकर गजो के मूसल-से दाँतो की चोट से टूटी भुजाओ वाले निरस्त्र होते हुए भी (यौगन्धरायण) पीछे पैर नही धरते, आगे ही बढते जा रहे है।[4]

हा धिक् ! आर्य यौगन्धरायण निश्चय बन्दी कर लिये गये है ! फिर तो मै भी आर्य यौगन्धरायण का बगलगीर होता हूँ। (जाता है)

भट—अरे यह सब क्या (हो गया) ? यह स्थान तो प्राचीर और तोरण को छोड सर्वथा कौशाम्बी हो गया है। अच्छा, यह सारा वृत्तान्त अमात्य से निवेदन करूँ। (जाता है)

(प्रवेशक का अन्त)

(दो साधारण सिपाहियों का प्रवेश)

दोनो—हटे, हटे, आप लोग राह छोड़े !

पहला—कष्ट, गला फाडने पर भी हल्ला बन्द नही होता।

दूसरा—खेद कि राजकन्या वासवदत्ता के हरण से उद्विग्न होने

से इतना चिल्लाने पर भी कोई मेरी बात नही सुनता ! अरे क्या करते हो ? किस कारण यह भाग-दौड़ हो रही है ? आर्य यौगन्धरायण पकड़े गये। क्या कहते हो ? किसप्रकार पकडे गये ? आर्य लोग सुने—आर्य यौगन्धरायण ने दूसरी अक्षौहिणी के आक्रमण को भी तलवार मात्र स क्षण भर रोक लिया। (परन्तु) विजय सुन्दर (नामक) गज के दान्त पर आघात करते समय वह तलवार भी टूट गई। (इससे) वे तलवार टूट जाने से पकड़े गये, पौरुष की कमी से नही।

पहला—अरे तुम लोग अब अपना पागलपन छोडो। यह तो प्राचीर और तोरण से रहित स्वय कौशाम्बी (आ पहुँची) है।

दोनो—उतरे, उतरे, आर्य, उतरे !

(बाहुबद्ध फलक। शयन पर पड़े यौगन्धरायण का प्रवेश)

यौगन्ध०—लो, यह उतर गया मैं।

वत्सराज को शत्रु के बन्धन से मुक्तकर, रण मे अपने शस्त्र टूट जाने से वन्दी होकर, स्वामी का दु ख दूरकर विजित हुआ हूँ, अत राजकुल मे सुख से प्रवेश करता हूँ।[५]

अरे, पत्नीविहीनो का वन-प्रवेश सुखकर होता है, कार्य सपन्न कर चुकने वालो का नाश भी अधिक रमणीय लगता है, पुण्य सचित किये हुए जनो को मृत्यु से पश्चात्ताप नही होता। स्वय मैंने,

वैर, भय, और अपमान को समान रूप से त्याग कर, नीति, विनय तथा बाणों से कार्य पूरा कर, शत्रु की शालीनता (लक्ष्मी) और मित्र का अपयश नष्ट कर, विजय, राजा (वत्सराज) और 'महान्' (यश) शब्द को प्राप्त किया है।[६]

दोनो—हटे, हटे, आर्य ! हटे।

यौगन्ध०—मेरे दर्शन के अभिलाषी जनो को न हटाओ।

राजा के प्रेम से विपत्ति मे पड़े मुझको राजा के जन देख ले। जो अमात्य होने के मनोभिलाषी है उनकी इच्छा (मुझे देखकर) चेष्टाहीन अथवा नष्ट हो जाय।[७]

दोनो—हटो, हटो ! क्या तुम लोगो ने आर्य यौगन्धरायण को पहले नही देखा है ?

यौगन्ध०—पहले देखा है (सही), पर इस रूप मे नही। मुझे तो पागल के छद्मवेष मे गलियो मे भागते हुये देखा है, अब उस रूप से सम्पादित कार्य देखते है।[८]

भट—(प्रवेश कर) आर्य, प्रिय समाचार सुनाता हूँ—वत्सराज पकड लिये गये !

यौगन्ध०—यह नही हो सकता—

शत्रु के नगर मे, देर हुई, बन्धन से मुक्त होकर वे भद्रवती पर वन पार कर गये। पलमात्र मे योजनो जाने वाला क्या पकडा जा सकता है ?[९]

भद्र, (यह भी) सुना कैसे पकड़े गये ?

भट—नलागिरि द्वारा पीछा करके पकड़े गये।

यौगन्ध–उस वाहन (हाथी) मे शक्ति तो (निश्चय) है परन्तु उसका सचालन अयुक्त हुआ ।

गज का वेग महावत की शिक्षा पर निर्भर करता है । वत्सराज द्वारा मुक्त कर दिये जाने पर भला कौन उसका सचालन कर सकता था ?[१०]

भट–आर्य, अमात्य ने कहा है कि आप शस्त्रागार मे ठहरे । यह स्थान पुरुषो द्वारा रक्षित है ।

यौगन्ध०–अरे (कैसी) हँसी की बात कही–

वत्सराज रूपी अग्नि को जिस काल बाँध कर सब ओर से रक्षा करनी थी उस काल तो अमात्य गण सोते रहे और अब रत्न को खोकर उसके पात्र की रक्षा करने से भला क्या लाभ ?[११]

भट–(घूमकर) यह है शस्त्रागार । आर्य प्रवेश करे ।

(प्रवेश करके) अमात्य ने कहा है–बन्धन हटा दो ।

यौगन्ध०–हॉ, मुझे हल्का कर दो । स्पष्ट है कि भरतरोहक मुझसे मिलना चाहता है । मै भी भरतरोहक से मिलना चाहता हूँ ।

मेरे रोष पूर्ण प्रमाद भरे वचनो से निश्चय उसके हृदय को चोट लगी होगी, प्रारब्ध और नीति के छल से जिस प्रकार उसने छला था, उसी प्रकार विनिश्चित नीति शास्त्र के विधान के अनुसार मैने उस बुद्धि के के घमडी को छला । अब मै द्वद्वयुद्ध मे पराजित लज्जा से झुके मुख वाले उस मल्ल को देखना चाहता हूँ ।[१२]

(भरतरोहक का प्रवेश)

भरतरोहक—कहाँ है ? कहाँ है वह यौगन्धरायण ?

अपने कार्य को सपन्न कर चुकने वाले, वचकता के कारण देखे न जा सकने योग्य, स्वामी के हित के अर्थ विपद् मे पडे मत्रबद्ध क्रुद्ध सर्प की भाति ऊँचा मस्तक रखने वाले (यौगन्धरायण से) भला किस प्रकार बात करूँ ?[13]

भट—आर्य यौगन्धरायण आर्य को शस्त्रागर मे प्रतीक्षा कर रहे है ।

भरतरोहक—अच्छा, अच्छा—

अपने मत्रित्व के समय नीलगज द्वारा धोखे से ठगा गया वह उसी वैर के बदले के लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहा है ।[14]

भट—आर्य, यह रहे अमात्य ।

भरतरोहक—(पास जाकर) यौगन्धरायण !

यौगन्ध०—हाँ—

भट—वाह, स्वर मे कैसी गभीरता है ! आर्य के एक अक्षर मात्र से यह स्थान भर गया ।

भरतरोहक—(बैठकर) 'यौगन्धरायण' यह नाम भर सुना था । सौभाग्य से (आज) आपको देख रहा हूँ ।

यौगन्धरायण—सौभाग्य से आपको देख रहा हूँ । आप मुझे देखे ।

इसप्रकार रुधिर से लाल शरीर वाले, वेर से

युक्त, मुझ बँधे हुये को, गुरुहन्ता को मारकर शान्त बैठे अश्वत्थामा की भाँति देखें।[१५]

भरतरोहक—अहो, छल से बने गज की ओर आप संकेत कर रहे हैं।

यौगन्धरायण—छल की क्या बात? वह तो इस काल भी युक्त है। जो वह मल्लिका और साल वृक्षो के बीच कृत्रिम गज का धोखा किया गया था उससे बांध कर हमारे राजा को बाहु का तकिया लगाकर भूमि पर सोना पडा। वीणा बजाकर गजग्रहण सबन्धी हमारे राजा की कुशलता के कारण वह धोखा हुआ। उसी आपके, पहले किये धोखे के उत्तर में ही मुझे यह आचरण करना पडा। इसमे मेरा दोष नही है।[१६]

भरतरोहक—हे यौगन्धरायण, महासेन की कन्या को अग्नि को साक्षी कर शिष्या रूप मे वत्सराज ने स्वीकार किया था। उस बिना (वधूवत्) दान मे पायी का हरण कर ले जाने वाली जो चोर वृत्ति है, वह तो उचित ही है!

यौगन्धरायण—न, न, ऐसा न कहे। यह तो निश्चय हमारे स्वामी का विवाह हुआ है।

भरतों के कुल मे उत्पन्न होकर वत्स देश के प्रसिद्ध नरपति होकर (हमारे उदयन) बिना पत्नी बनाये भला उसे शिक्षा क्यो कर देगे?[१७]

भरतरोहक—आज भी महासेन ने वत्सराज का सत्कार ही किया—इसे क्यो नही देखते?

यौगन्धरायण—नही, नही, ऐसा न कहे आप—

इस कारण कि नलागिरि इनका अनुशासन मानेगा क्यो कि वह शिक्षितो के वचन को मानता है, आपके स्वामी ने अपने शरीर और अपने सुहृदों के जीवन तथा यश की रक्षा के लिये उन्हे (वत्सराज को) छोडा था।[१८]

भरतरोहक—यदि यह बात थी और नलागिरि को पकडने के लिये ही विमुक्त किया था तब फिर तुम्हारे स्वामी को क्यो नही बन्धन मे डाला ?

यौगन्धरायण—निन्दा के भय से ऐसा नही किया, बस।

भरतरोहक—यह बात आप राजनीति के विरुद्ध कह रहे है। रण मे विजित शत्रु के लिये शास्त्र क्या कहता है ?

यौगन्धरायण—वध।

भरतरोहक—(फिर) वध के योग्य वत्सराज का सत्कार हमने क्यो किया ?

यौगन्धरायण—वह तो यह सोचकर कि (ऐसा करने से) इसके (महासेन का) शरीर का भी अपहरण न हो जाय।

भरतरोहक—इसकी संभावना भी हमारे स्वामी ने मान ली थी क्या ?

यौगन्धरायण—भूल मे क्या सशय ?

तुम्हारे राजा को हाथ में पाकर भी हमारे साधु स्वामी ने उसकी रक्षा की। गज पर सवार हुये बिना उस पर स्थित ध्वज नही गिराई जा सकती ?[१९]

भरतरोहक—अच्छा, अच्छा। महासेन को प्रतिकूल करके भला

तुम्हारी बुद्धि ने कौशाम्बर के प्रति क्या किया ?

यौगन्धरायण—क्या हँसने की बात करते हो ?

जो आगे आया (हुआ) उसे तो आपने देखा ही, शेष कार्य का क्या कहना ? वृक्ष को समूल उखाड़ चुकने पर उसकी शाखा काटते क्या मेहनत होती है ?[२०]

कचुकी—(प्रवेश कर कान में) इस प्रकार।

भरतरोहक—प्रगट कहो।

कचुकी—अनेक उपयुक्त कारणो से निश्चय आपने यह अपकार नही किया। (आपके) गुणों के प्रति मेरा कोई द्वेष नही, इस शृगार (स्वर्णपात्र) को स्वीकार करे।[२१]

—यह।

यौगन्धरायण—हाय, धिक्कार है।

मेरे जलाये हुये घर अभी तक ठडे नही हुये, उसी प्रकार मन्त्रियो के हृदय भी (अभी तक जल रहे है)। मुझ दण्डनीय की यह पूजा हो रही है। अरे अपराधी की सत्कृति तो उसके वध मे है।[२२]

(नेपथ्य में हाहाकार होता है)

भरतरोहक—अरे—

महल के अग्रभाग से सहसा यह कैसा हाहाकार निकल पडा, जैसे बाज के झपटने पर कुररियाँ करती है।[२३]

अरे, जानो इस कोलाहल का कारण।

कचुकी—आर्य की जैसी आज्ञा। (बाहर जाकर फिर लौट कर)

दु ख से अभिभूत हृदय वाली रानी अगारवती प्रसाद से कूदकर प्राण देने को प्रस्तुत थी। महासेन ने उनसे कहा कि कन्या का विवाह क्षात्र विधि से ही सपन्न हुआ है। सो क्यो इस प्रसन्नता के समय मे सताप करती हो? इससे वत्सराज और वासवदत्ता के चित्रो को रखकर विवाह की क्रिया पूरी करो। सो वहाँ–

स्त्रियाँ आज क्रमशः प्रसन्न और व्याकुल होकर आँखो मे आसू भर कर मगल क्रिया कर रही है।[२४]

यौगन्धरायण–इस प्रकार महासेन यह सबन्ध स्वीकार करते है। इससे यह शृगार (**स्वर्ण पात्र**) अब तुम ले जाओ।

कचुकी–लें। (**लाता है**)।

भरतरोहक–हे यौगन्धरायण, अब महासेन तुम्हारा क्या प्रिय-कार्य करे?

यौगन्धरायण–यदि महासेन मुझ पर प्रसन्न है तो इससे बढ कर और क्या चाहूँगा?

(भरत वाक्य)

गाये धूलि रहित हो, शत्रुओ के कुचक्र शान्त हो, और इस समूची पृथ्वी पर हमारे राजसिह शासन करें![२५]

(सब का प्रस्थान)